स्वामी रामानन्द वचनामृत

(पत्र पीयूष नामक पुस्तक में प्रकाशित
पूज्य स्वामी रामानन्द जी महाराज द्वारा लिखित पत्रों से संग्रहीत)

साधना परिवार
स्वामी रामानन्द साधना धाम
संन्यास रोड, कनखल, हरिद्वार (उत्तराखण्ड)-249408

प्रथम संस्करण - दिसम्बर 2017

1000 प्रतियाँ

मूल्यः ....

© सर्वाधिकार सुरक्षित

प्रकाशकः
साधना परिवार
स्वामी रामानन्द साधना धाम
संन्यास रोड, कनखल, हरिद्वार (उत्तराखण्ड)-249408

कम्पोजिंगः
ग्रेटो इंटरप्राइजेज़
जी-30, सरिता विहार, नई दिल्ली-110076, दूरभाषः 9910794578

मुद्रकः
रैक्मो प्रैस प्राइवेट लिमिटेड
सी-59, ओखला इण्डस्ट्रियल एरिया फेज़-1, नई दिल्ली-110020

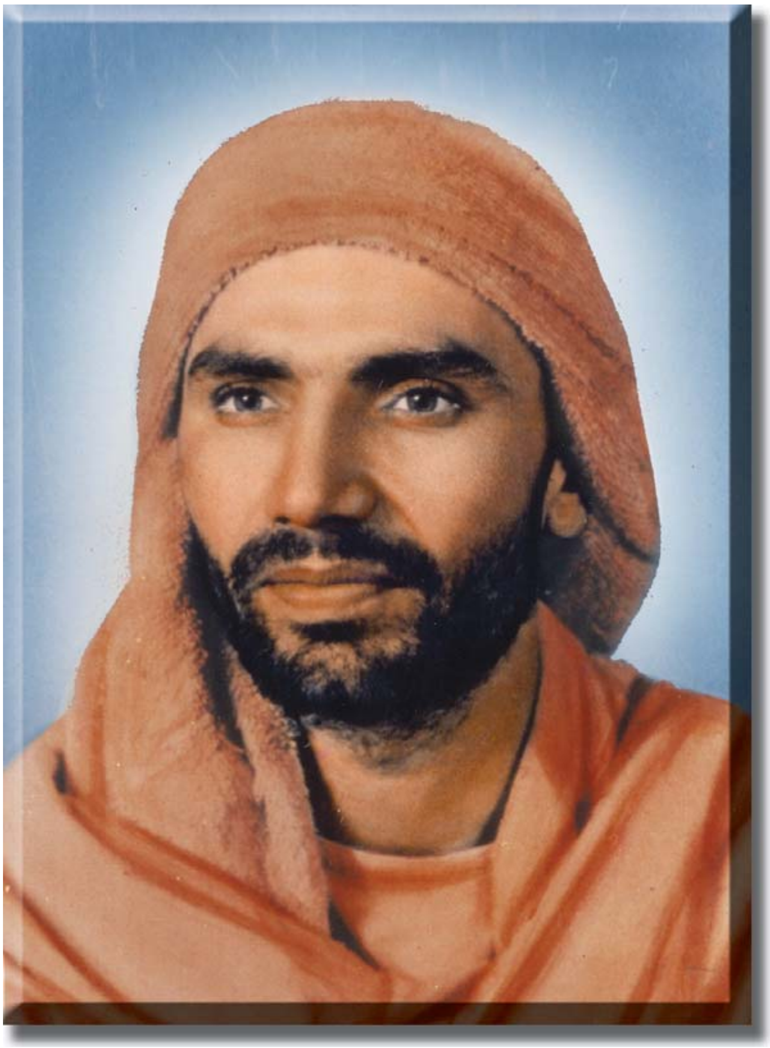

स्वामी रामानन्द जी महाराज

श्री राम

भगवान् के विधान में सुख तथा दु:ख दोनों ही हुआ करते हैं। शरीर के जीर्ण होने पर उसका शान्त होना भी सर्वथा स्वाभाविक है। हमें दु:ख होता है अपनी ममता के कारण। (पत्र 1, पृष्ठ 1)

❖ ❖ ❖

इन्द्रियों से मन प्रबल है, मन से बुद्धि बलवती है और आत्मा बुद्धि से भी अधिक बलशाली है। आप आत्मा हैं। यह रोग काम तथा क्रोध मन के विकार हैं। आप मन से अधिक बलवान हैं। मन आपका है। आपका दास है, वह आपकी इच्छा के विरुद्ध चल नहीं सकता।

(पत्र 2, पृष्ठ 1)

❖ ❖ ❖

मनुष्य जीवन का सार भगवत् प्राप्ति है। जब तक आप अपने को क्रोध के वश में रखेंगे, आप इस लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर सकते।

(पत्र 2, पृष्ठ 2)

❖ ❖ ❖

क्रोध के वशीभूत होने का अर्थ है हरि मिलन की अवधि को और भी लम्बा करना। क्रोध कोई आपके बाहर की चीज़ नहीं है, न आपसे बलवती है जो आप इसके आगे अवश्य झुकें। आप तो आत्मा हैं। शान्त और शक्ति के स्वरूप हैं, श्री राम के अंश हैं। सतत् आनन्दमय हैं, आप पर क्रोध कैसे काबू पा सकता है? (पत्र 2, पृष्ठ 2)

❖ ❖ ❖

श्री राम पद में रमण करने का मेरी समझ में नाम से बढ़कर कोई साधन नहीं। इसके साथ-साथ हम जितना अपने आपको प्रभु के समर्पण करते चले जाते हैं, अपने मंगल के लिये अपने साधन का आश्रय न लेकर उसकी कृपा का आश्रय लेते हैं उतनी ही जल्दी हम आन्तरिक शान्ति को लाभ करते हैं। (पत्र 3, पृष्ठ 3-4)

❖ ❖ ❖

जिस व्यक्ति के पास हरिनाम प्राप्त है, उसे भय किस प्रकार का? वह तो जगजननी महाशक्ति की सदैव आनन्दमयी गोद में विलास करता

है और माता का विधान इसके लिये सर्वदा आनन्दमय ही होता है। ज्यों-ज्यों हम परम प्रभु के इस स्वरूप को समझते हैं, हम में उसके प्रति आत्म समर्पण की भावना प्रबल होती जाती है। हम अपनी इच्छाओं को, संकल्पों तथा विकल्पों को उसकी लीला समझते हुये उस ही के अर्पण करते चले जाते हैं। 'प्रभु तेरी इच्छा पूर्ण हो।' (पत्र 4, पृष्ठ 4)

❖ ❖ ❖

आप सतत् स्मरण का अभ्यास करियेगा। महाशक्ति की क्रिया हममें रात-दिन अनवरत होती रहती है। हमें अपने को उसके हाथों अर्पण करना ही है। (पत्र 4, पृष्ठ 4)

❖ ❖ ❖

साधन में अधिक बड़ी बात है प्रभु पर विश्वास, उसकी दयालुता, सर्वशक्तिमत्ता का अविचल निश्चय। जिस व्यक्ति ने परमपिता के विश्वास को प्राप्त किया है, उसकी सन्निधि को प्रतिक्षण प्रतीत करता है, वह ऐसे अनुभव करता है जैसे माता की गोदी में बालक अनुभव करता है। दिन में समय-समय पर हम चिन्तन करें - **'परमात्मदेव श्रीराम, तुम परम शुद्ध, बुद्ध, नित्य, सर्वशक्तिमान्, सच्चिदानन्द स्वरूप, ज्योतिर्मय एकमेवाद्वितीय परमेश्वर हो, परम-पुरुष दयालु देवाधिदेव हो! तुम्हें बार-बार नमस्कार हो।'** और मन ही मन प्रभु को समीप समझ कर उसके आगे झुक जाइयेगा। इस प्रकार प्रभु की समीपता का भान बना रहने लगता है। (पत्र 5, पृष्ठ 4-5)

❖ ❖ ❖

प्रभु भक्त हरि की प्राप्ति के लिए अपने बाहुबल का आश्रय नहीं लेता। वह तो यह निश्चित रूप से जानता है कि केवल मात्र प्रभु की कृपा महाशक्ति ही मुझ में अवतरित होकर मुझे निर्मल कर सकती है और प्रभु के चरणों में संयुक्त कर सकती है। प्रभु के नाम का वह अधिकाधिक स्मरण करता है, परन्तु इस प्रकार से जैसे कि भूखे को रोटी की स्मृति होती है। प्यारे को प्यारे की स्मृति होती है। वह प्रभु का स्मरण प्रभु का पूजन रूप करता है। निश्चित ही प्रभु कृपा उस पर अवतरित होती है और उसको निर्मल करती चली जाती है। काम-क्रोधादि विकार धीरे-धीरे शान्त होते चले जाते हैं और वह प्रभु-पगों के निकट पहुँचता

चला जाता है और उतावला भी नहीं होता क्योंकि वह जानता है कि प्रभु उसका अधिकाधिक हित चाहते हैं और करते हैं। (पत्र 6, पृष्ठ 5)

❖ ❖ ❖

हम अतुल बल के भण्डार हैं। हमें यह पहिचानना होगा और हम फिर अपने में बल की प्रतीति करने लगेंगे। आत्मा भागवत् अंश है। शक्ति का, ज्ञान का, आनन्द का, अपार भण्डार है। (पत्र 7, पृष्ठ 5-6)

❖ ❖ ❖

अपने को प्रभु का पुत्र समझिएगा। उसका रक्षामय, प्रेममय हस्त, शक्तिमय हस्त हमेशा हमारे मस्तक पर है। हम सदा उस जगजननी की आनन्दमयी गोद में हैं। ऐसी भावना कीजिएगा। (पत्र 7, पृष्ठ 6)

❖ ❖ ❖

हरि-कृपा प्राप्त व्यक्ति परिस्थितियों का दास नहीं होता। वह अपने संकल्प को भागवत् संकल्प से एक कर देता है और प्रकृति उसका अनुकरण करती है। श्रीराम के पतित पावन नाम का आश्रय लेने वाला व्यक्ति यदि अपने को दुर्बल समझे तो अभी वह उस परम प्रभु की महिमा को कुछ भी नहीं समझ पाया। (पत्र 7, पृष्ठ 6)

❖ ❖ ❖

प्रभु का अटल भरोसा रखना चाहिए। उसने हमारी बाँह को पकड़ा है तो वह अन्त तक निभाएगा। (पत्र 7, पृष्ठ 6)

❖ ❖ ❖

भजन साधन में सब से बड़ी वस्तु है, भगवान में जीवित विश्वास, उनकी सतत् अवतरित होने वाली कृपा का भरोसा और प्रभु के प्रति सर्वस्व समर्पण। यह भक्त का धन है। (पत्र 9, पृष्ठ 7)

❖ ❖ ❖

ज्यों-ज्यों नाम हममें रमने लगता है, प्रभु की कृपा हम पर होने लगती है। हम प्रतीत करने लगते हैं कि हमारा अन्तरात्मा बदलता चला जा रहा है और हम उस शान्ति के धाम, करुणा के निधि, श्रीराम के समीप होते चले जाते हैं। (पत्र 9, पृष्ठ 7)

❖ ❖ ❖

जो व्यक्ति भगवान् की ओर अग्रसर हो जाता है और जब वह राम-नाम

का विधिवत लाभ कर उसका जप-चिन्तन करने लगता है भगवान् की कृपा उस पर सतत प्रवाहित होने लगती है और उसे रात्रि-दिवस उठाती है। यह मार्ग दृढ़ निश्चय का, प्रभु के पक्के भरोसे का तथा आत्म-समर्पण का मार्ग है। (पत्र 10, पृष्ठ 8)

❖ ❖ ❖

जल्दी सोइये, जल्दी जागिये। थोड़ा भ्रमण अथवा व्यायाम कीजिएगा। पाठ को कम करके भी अधिक जाप करियेगा। खाली समय का सदुपयोग स्मरण द्वारा करें, सब कुछ ठीक हो जायेगा। (पत्र 11, पृष्ठ 8)

❖ ❖ ❖

आप लगन-पूर्वक साधन करते चले जाइएगा। अपने व्यवहार को जाँचना- इसमें सरसता को लाना तथा सेवा की जीवित जाग्रत मूर्ति बन जाना भक्ति के पथ में एक ऊँचा आदर्श है। (पत्र 14, पृष्ठ 10)

❖ ❖ ❖

साधक अपनी वाणी तथा विचारों को ऐसा संयमित करने का यत्न करता है कि कार्य में शक्ति का अपव्यय तो होता ही नहीं। बुरे संस्कार भी ग्रहण नहीं कर पाता। वाणी को मधुमयी लोकहित-कारिणी तथा आत्महित कारिणी बनाना उसका ध्येय होता है। प्रसन्नचित्तता को वह कभी भी नहीं खोता। (पत्र 15, पृष्ठ 11)

❖ ❖ ❖

अपने को अधिकाधिक खोलते चले जाना - मन, बुद्धि, तन-सभी का समर्पण उसमें करते चले जाना और उससे भी अधिक यह दृढ़ विश्वास रखना कि भगवान ने आप का चार्ज ले लिया है। वह स्वयं आपको लेते चले जायेंगे और जब तक पूर्ण पद की आपको प्राप्ति नहीं होती तब तक छोड़ेंगे नहीं। (पत्र 17, पृष्ठ 12)

❖ ❖ ❖

नाम का तन्तु इस भक्त तथा भगवान के नाते को जोड़ने तथा उसे दृढ़ करने वाला है यही इस सारी साधना की आधार शिला है।
(पत्र 17, पृष्ठ 12)

❖ ❖ ❖

यदि आपका विश्वास भागवत जीवन में है, यदि चाह उसके पाने

की है तो दुर्वासनायें स्वत: क्षीण होती चली जायेंगी। इनका साक्षी बनना सीखो इनसे युद्ध करना नहीं। यही शान्ति का सुगम उपाय है। भगवान् का अवलम्बन लीजियेगा। सच्ची लगन के लिये प्रार्थना कीजियेगा। बाकी सब कुछ स्वयं होगा। (पत्र 18, पृष्ठ 12-13)

❖ ❖ ❖

आध्यात्मिक साधन में लगन तथा धैर्य ही सबसे आवश्यक सम्बल हैं, इनके बिना सफर करना असम्भव है। (पत्र 19, पृष्ठ 13)

❖ ❖ ❖

साधन को जीवन व्यापी बनाने का यत्न करना चाहिये। हम सतत् भगवान के सान्निध्य को प्रतीत कर सकें और उसकी सौम्यता तथा समता-मयी चेतना में निवास कर सकें। सतत् प्रयत्न के बिना सतत् आत्म-समर्पण की भावना को जागृत किये बिना व्यक्ति की प्रगति में शिथिलता आ जानी स्वाभाविक है। (पत्र 21, पृष्ठ 14)

❖ ❖ ❖

किसी के कहने मात्र से डर कर हम अपने कर्तव्य से च्युत हो जायें तो यह भीरुता होगी। लोग तो अपने कर्तव्य के लिये जीवन होम कर देते हैं। (पत्र 26, पृष्ठ 15-16)

❖ ❖ ❖

समुचित शिक्षा के बिना प्रतिबन्धों का दूर हो जाना भयानक हो जाता है। नारी की ज़िम्मेदारी समाज तथा जाति के निर्माण में पुरुष से कहीं अधिक है। जब वह फिसलती है तो परिवारों की सौम्यता नहीं रहती और सन्तति तबाह हो जाती है। (पत्र 27, पृष्ठ 17)

❖ ❖ ❖

अपनी किस्मत को, भाग्य को कोसना तो भक्तों का काम नहीं। भक्त तो हर अवस्था में प्रसन्न रहा करते हैं। उन्हें तो भगवान का भजन, उसके जनों की सेवा तथा जीवन की निर्मलता चाहिये। इतने में सन्तुष्ट रहते हैं। शरीर के कष्ट के लिये तथा अर्थ के कष्ट के लिये वह दुखी नहीं होते और जब इतनी भक्ति उनमें उदित हो जाती है, श्रीराम के प्रति इतनी श्रद्धा तथा विश्वास हो जाता है तो उनके कष्ट भी निवृत्त हो जाया करते हैं। (पत्र 28, पृष्ठ 19)

❖ ❖ ❖

सेवा ही जीवन की उपयोगिता है और साधना इसका सार। सेवा तथा साधना मिल कर सोना तथा सुगन्ध हैं। यही उच्च जीवन का आदर्श होता है। (पत्र 29, पृष्ठ 18)

❖ ❖ ❖

ध्यान में आगे बढ़ने पर अवस्थायें बदला करती हैं। यह उन्नति के ही लक्षण हैं। नाम का प्रभाव सूक्ष्म हो जाता है। स्थूल मन को उसकी प्रतीति नहीं होती। (पत्र 29, पृष्ठ 18-19)

❖ ❖ ❖

जितनी दृढ़ हमारी लगन होती है उतना ही प्रबल तथा अक्षय हमारा संकल्प हुआ करता है। (पत्र 30, पृष्ठ 19)

❖ ❖ ❖

संकल्प-विकल्प होने पर भी भागवती शक्ति अपनी क्रिया जारी रखती है। Superconscious (ऊर्ध्व चेतना) में Cosmic Kundalini (जगत कुण्डलिनी) का काम तो रात दिन चला करता है। ज़रा सा प्रयत्न करने से क्रिया की प्रतीति होने लगती है। जब हम किसी अन्य कार्य में व्यस्त होते हैं उस समय भी अन्दर काम होता रहता है। यह भगवान की शक्ति है जो हमें पल-पल बदला करती है। (पत्र 30, पृष्ठ 19)

❖ ❖ ❖

अपने में प्रभु अर्पित होने का भाव-अपनी रुचियों को, इच्छाओं को छोड़ने का भाव पैदा करना चाहिये जैसे प्रभु रखना चाहे उसी में प्रसन्न रहने का यत्न करना चाहिये। उस स्वामी का विधान हमारे लिये सदैव अच्छा ही होता है। (पत्र 31, पृष्ठ 20)

❖ ❖ ❖

गृह कार्य को समुचित रीति से निभाते हुए अपनी तार को जोड़े रखने का यत्न कीजियेगा। जितना कुछ बन पड़े उसके लिये तो प्रभु का धन्यवाद और अधिक के लिये कामना करनी है। इसी प्रकार से अधिकाधिक कृपा का अवतरण होता है। (पत्र 33, पृष्ठ 21)

❖ ❖ ❖

उस महाशक्ति के हाथों में अपने को समर्पित करियेगा। जिस अनुभूति की आवश्यकता होगी, जिस प्रतीति से आपका मंगल होगा सो आपको

होती चली जायेगी। (पत्र 33, पृष्ठ 21)

❖ ❖ ❖

सुख और शान्ति तो बहुत कुछ हमारे पर ही निर्भर करती है। इच्छा, कामना, राग तथा द्वेष दु:ख को लाते हैं। त्याग, सेवा तथा प्रीति और नम्रता व्यक्ति में सुख का संचार करते हैं। भगवान् के समीप होने से शान्ति आती है। उनसे दूर होने से उनके और अपने बीच में संसार के पदार्थों को रखने से व्यक्ति को व्याकुलता होती है। प्रभु के लिए लगन पैदा करियेगा। वह लगावट जो पुत्र पौत्र तथा धन-धान्य में है, यदि प्रभु में हो तो शान्ति झट से आने लग जायेगी। प्रभु नाम को भीतर गुंजा देना चाहिये, उसका रटन रहा करे रात-दिन, फिर आनन्द ही आनन्द हो जायेगा। व्यक्ति धन से बड़ा नहीं होता और न ही मान से बड़ा होता है। प्राय: इन दोनों से वह गढ्डे में गिरता है, बड़ा होता है भगवान के समीप होने से, निर्मल मन होने से, दूसरों की सेवा करने से। यदि हम प्रभु का होना चाहते हैं तो अपने को मिटा देना होगा। (पत्र 36, पृष्ठ 22-23)

❖ ❖ ❖

साक्षी बनकर मन की इस लीला को देखने का यत्न करियेगा। ईश्वर भजन में मन लगा रहे तो ठीक ही है। जब सांसारिकता की ओर भागे तो इसे रोकने का यत्न न कीजियेगा। खूब भागने दीजिये, घबराईयेगा भी नहीं। अनासक्त भाव से तमाशे को देखियेगा। खूब दौड़-दौड़ कर धीरे-धीरे मन अपने में आ जायेगा और भटकना बीत जायेगा। आपकी आज्ञा का पालन करने लगेगा। बलात्कार करने से मन के प्रसुप्त रोग दबकर अधिक खराबी पैदा करते हैं। बुद्धि की समता को बनाये रखने का यत्न कीजियेगा। यही एकमात्र उपाय है आन्तरिक शुद्धि का छिपी हुई आसक्तियों के कारण ही यह लीला होती है। धीरे धीरे वह शान्त हो जायेंगी और मन अपने परमपद में, भगवान में लीन होने लग जायेगा। (पत्र 38, पृष्ठ 23-24)

❖ ❖ ❖

अटूट निश्चय भगवान के नाम में, दृढ़ लगन तथा तदनुकूल प्रयास - इस साधनत्रय से व्यक्ति परमधाम की अपार शान्ति को लाभ करता है। (पत्र 38, पृष्ठ 24)

❖ ❖ ❖

साधक की सबसे बड़ी आवश्यकता है लगन। उसका जीवन, जीवन के प्रत्येक कृत्य श्रीराम के लिए ही हों। स्वप्न में भी उसे अपने स्वकीय लक्ष्य की स्मृति न हो। (पत्र 39, पृष्ठ 24)

❖ ❖ ❖

भजन के समय अपने शरीर को शिथिल करना सीखना चाहिये। कमर भी यदि झुक जावे तो डर वाली बात नहीं। इसी प्रकार मन तथा मानसिक धारणाओं को शिथिल करना सीखना चाहिए। आन्तरिक प्रेरणा मुख्य होती चली जानी चाहिये। इसी में श्रीराम की वाणी का बोध प्राप्त होने लगता है। (पत्र 39, पृष्ठ 24)

❖ ❖ ❖

आप जितना अधिक जाप करेंगे उतना ही लाभ होगा। चलते फिरते स्मरण कीजियेगा। (पत्र 40, पृष्ठ 25)

❖ ❖ ❖

भजन करने से साधक की आत्मशक्ति जग जाती है। भागवती शक्ति का अवतरण भी होता है। इस कारण शरीर में भिन्न-भिन्न नाड़ियों में सूक्ष्म शरीर में प्राण की गति होने लगती है। उससे शरीर का मन तथा बुद्धि का शोधन होने लगता है। धीरे-धीरे भीतर स्थिरता तथा शान्ति होने लगती है। दिव्य चेतना का आविर्भाव होने लगता है। जब शक्ति मूलाधार से ऊपर को जाती हो तो विशेष प्रतीति होती है। इस प्रकार की गतियाँ सिर में भी होती हैं। यह सब शुभ लक्षण हैं। शरीर को शिथिल कर देना चाहिये। आसन में जो स्वभावत: परिवर्तन होने को हो उसे रोकना नहीं चाहिये। (पत्र 41, पृष्ठ 25)

❖ ❖ ❖

व्यायाम होना चाहिए। पूजादि के उपरान्त भी प्रात: भ्रमण के लिये जाया जा सकता है। जीवन को नियमित करना ही इस विषय में एक इलाज होता है। ऐसा करने से काफ़ी समय जिसका हम दुरुपयोग करते हैं काम में आ सकता है। (पत्र 42, पृष्ठ 26)

❖ ❖ ❖

अपने जीवन में प्रत्येक कृत्य जो आप करते हैं उसकी अपने पर जिम्मेदारी प्रतीत करने का यत्न कीजियेगा। वह भाव जो हमारे हृदय में

उठते हैं उन पर नज़र रखनी आवश्यक है और अपनी वाणी तथा कर्मों पर भी। श्रीराम-भक्त का जीवन सेवा से, परहित से परिपूर्ण होता है।

(पत्र 42, पृष्ठ 26-27)

❖ ❖ ❖

साधक के जीवन में एक घाटी तक पहुँचने तक उतार-चढ़ाव होते हैं। उसको पार करने पर रास्ता सीधा ऊपर चला जाता है।

(पत्र 43, पृष्ठ 27)

❖ ❖ ❖

हमारे पथ में श्रीराम कृपा ही मुख्य है। भक्त भक्ति भाव से प्रभु के नाम का स्मरण और उसकी कृपा किरण की प्रतीक्षा करता है। वह कार्य जो योगी लोग तथा तपस्वी नहीं कर पाते वह उसे बिना प्रयास ही सहज में प्राप्त होता है। (पत्र 43, पृष्ठ 27)

❖ ❖ ❖

शरीर को शिथिल करना चाहिए और इसे तटस्थ होकर ही देखना चाहिये अर्थात् यह इच्छा न करनी चाहिये कि यह आगे बढ़े अथवा कम हो जाये, भागवती शक्ति ही इस विषय में परम नेता है।

(पत्र 44, पृष्ठ 28)

❖ ❖ ❖

संसार में प्राणी विकास की विभिन्न सीढ़ियों पर है, इसे न भूलना चाहिये। (पत्र 45, पृष्ठ 28)

❖ ❖ ❖

मस्तक पर ज़ोर शान्त हो जाना ही अच्छा है। जितना आप अपने मन तथा शरीर को शान्त तथा शिथिल कर पायेंगी उतनी ही जल्दी यह ज़ोर भी शान्त हो जायेगा। किसी विशेष केन्द्र में एकाग्रता करने का प्रयत्न बिल्कुल न कीजिएगा। (पत्र 46, पृष्ठ 29)

❖ ❖ ❖

रात्रि को जल्दी ही सोकर प्रातः खूब जल्दी उठने का अभ्यास करें। इस प्रकार भ्रमण के लिए समय भी निकल आएगा और भजन के लिए भी घण्टा भर मिल जाना कठिन नहीं होगा। (पत्र 47, पृष्ठ 30)

❖ ❖ ❖

अखण्ड जाप के लिये कमरा अलग कर डालियेगा। इस कमरे में यदि सम्भव हो तो बात-चीत अथवा काम, सिवा पूजा अथवा स्वाध्याय के, न होना चाहिये। यदि प्राय: पूजा उसी में की जाए तो बहुत अच्छा हो। यदि यह कमरा छोटा रहे तो और भी अच्छा हो। बड़े कमरे को charge करने के लिये नाम की तरंगों के प्रबल प्रभाव से भरने के लिये काफ़ी समय लगता है और यदि कमरे का सामान्य उपयोग किया जाए तो वह पैदा किया हुआ प्रभाव छिन्न-भिन्न हो जाता है। इसलिये उस कमरे का रक्षा-बन्धन आवश्यक होता है। फिर ऐसे लोग जिनका वास्तव में मन जाप के लिए स्वयं उत्साहित न हो, जहाँ तक हो सके, जाप में न बिठालने चाहिये। ऐसे व्यक्तियों के भाग लेने से जाप निर्जीव हो जाता है। अखण्ड जाप भगवान का प्रेमपूर्वक पूजन है। इसमें बेगारियों का क्या काम? भले ही जाप 4 घण्टे का हो जाए अथवा तीन-तीन बार बैठना पड़े इसकी पवित्रता तो ऐसी ही बनी रहनी चाहिए। यदि हमारी निजी निष्ठा ही ढीली-ढाली हो, तो फल विशेष असम्भव है। यदि ठीक रीति से अच्छे साधक मिलकर अखण्ड जाप करें, तो इतना लाभ एक दिन में हो सकता है जो कि दो महीने की नियमित साधना से। (पत्र 48, पृष्ठ 30-31)

❖ ❖ ❖

आहार का संयम, दिन भर यथासम्भव मौन रहकर जाप करना, सत्य, मित तथा प्रिय भाषण आदि नियमों का पालन भी परमावश्यक है। (पत्र 48, पृष्ठ 31)

❖ ❖ ❖

प्रात: उठने के लिये रात्रि के समय जल्दी से जल्दी सोना, शाम का खाना कम कर देना, और यथासम्भव जल्दी खाना, हवादार जगह में सोना हल्का ओढ़ना रहे, परन्तु ज़रूरत के मुताबिक। सोते समय प्रात: उठ जाने का संकल्प करना और नींद खुलते ही खटिया को छोड़ देना- इतनी बातें होनी चाहिए। आलस्यादि को हम अपने निश्चयात्मक संकल्प के द्वारा भगा सकते हैं। (पत्र 48, पृष्ठ 31)

❖ ❖ ❖

6 घण्टे रात्रि में सोकर दिन में आराम करने की आवश्यकता नहीं होनी चाहिये। यदि ज़रूरत हो ही तो आध घण्टा लेट लेने में कोई हरज

नहीं। (पत्र 48, पृष्ठ 31)

❖ ❖ ❖

नाम-स्मरण से, भगवान् चिन्तन से, सत्य तथा दृढ़ संकल्प से, हमारा aura ऐसा हो जाता है कि बुरे संस्कार इसको बेध ही नहीं सकते। (पत्र 51, पृष्ठ 33)

❖ ❖ ❖

अपने को सरल कर दो, ठीक बालकवत्। माता के हाथ अधिकाधिक प्रतीत होने लगेंगे। (पत्र 51, पृष्ठ 33)

❖ ❖ ❖

जब तक हम में सांसारिक कृत्यों से भागने की वृत्ति शान्त नहीं होती, जब तक हम उनको झंझट मानते हैं, ईश्वरीय पूजन नहीं मानते, तब तक यह तूफान हमें व्याकुल करेंगे। ज्योंही यह समझ लिया कि यह सब उसका कृत्य है, लीला है, उसी में मैं भी योग दे रहा हूँ, यह शान्त हो जायेंगे। (पत्र 52, पृष्ठ 34)

❖ ❖ ❖

हमारी दृष्टि पूर्णतया सीमित रहती है, हमें उससे ऊपर उठना असम्भव हो जाता है। अत: दूसरे की बातें भी समझ में नहीं आतीं। जो व्यक्ति अपने विचारों तथा बुद्धि की आसक्तियों को एकदम छोड़ने के लिये तैय्यार रहता है, जिसमें विशाल सहानुभूति होती है, दूसरे को समझने की इच्छा भी होती है, वही दूसरों की बातों को समझ सकता है और उनको प्रभावित कर सकता है और स्वयं प्रभावित हो सकता है। यह लचकीलापन आगे बढ़ने के लिए अनिवार्य प्रतीत होता है। इसके साथ ही साथ दृढ़ता की भी आवश्यकता है। इसके अभाव में व्यक्ति बिलकुल बेकार का होता है। (पत्र 56, पृष्ठ 36)

❖ ❖ ❖

भगवती शक्ति जिस पर भली प्रकार से अवधारित हो जाती है वह उसका परित्याग नहीं करती। भिन्न-भिन्न अवस्थायें संस्कारों को क्षीण करने मात्र के लिये होती हैं। (पत्र 57, पृष्ठ 37)

❖ ❖ ❖

पूर्णत्व तो पल भर में प्राप्त होने वाली वस्तु है ही नहीं, समय लगता

है और कई उतार चढ़ाव स्वभाविक ही हैं। (पत्र 57, पृष्ठ 37)

❖ ❖ ❖

दृश्य जगत में भी वास्तव में माता ही क्रिया करती है। आपको भुलाने के लिये नहीं आपकी संस्कार शृंखलाओं को क्षीण करने के लिये।

(पत्र 57, पृष्ठ 37)

❖ ❖ ❖

अपने मन को, तन को, अपनी बुद्धि को, अपने आपको उस पर छोड़ियेगा। (पत्र 58, पृष्ठ 37)

❖ ❖ ❖

जो अन्य प्रयत्नों का, अपनी साधना की पवित्रता के बल का भी परित्याग कर देता है, आश्रय मानता है तो भगवान का, विश्वास रखता है, उसकी परेशानियाँ खत्म हो जाती हैं। ज्यों ही उसको पूरा भरोसा प्राप्त हुआ, शान्ति का साम्राज्य छा जाता है। प्रत्येक अवस्था में उसी का हाथ दीखने लगता है। (पत्र 58, पृष्ठ 37)

❖ ❖ ❖

अपने को सुखी तथा दु:खी बनाने में आप नहीं जानती कि हमारा अपना कितना हाथ रहता है। उन्हीं शब्दों को यदि हम सुने अनसुने कर देते हैं तो हमें दु:ख नहीं होता और यदि हम महत्व देते हैं तो खेद होता है, व्याकुलता होती है – जीना भी दूभर हो जाता है।

(पत्र 59, पृष्ठ 38-39)

❖ ❖ ❖

दूसरों से हम यह आशा करें कि वह अपने तरीकों को बदल दें, तो यह प्राय: असम्भव है। और यदि हमारा सुख दूसरों के तरीकों के आश्रित हो गया तो हम सुखी शायद ही हो पायें। परन्तु यदि हम अपनी आदत को ऐसा कर लें कि दूसरों की बातों से हम दु:खी न हों तो कोई भी हमें दु:खी न कर पायेगा। इस तरह से तो हम हर अवस्था में सुखी रह सकते हैं। (पत्र 59, पृष्ठ 39)

❖ ❖ ❖

याद करने में ध्यान देना और स्मरण शक्ति में विश्वास रखना कि समय पर बात याद आनी चाहिए और याद आयेगी, यह आवश्यक

है। (पत्र 59, पृष्ठ 39)

❖ ❖ ❖

यह आत्मा शक्तिमय, ज्ञानमय, आनन्दमय और परम मंगलमय है। बारम्बार इस प्रकार की भावना करने से अन्त:करण में नवीन शक्ति का उद्‌भव होता है जो व्यक्ति के कार्यों में परिलक्षित होती है। सभी दोषों को निर्मूल करने के लिए श्री राम नाम का दृढ़ निश्चय और धैर्य से जपने योग्य है। सतत स्मरण का विशेष अभ्यास करणीय है।

(पत्र 61, पृष्ठ 41)

❖ ❖ ❖

जिस प्रकार पुरुषोत्तम राम समस्त असुरों का वध करने में समर्थ हैं उसी प्रकार उनका नाम भी। आपको अनन्त शक्ति का आवाहन करके प्रात: और सायंकाल उसका चिन्तन करना चाहिए। दिन में भी उसके सान्निध्य का चिन्तन होना चाहिए। (पत्र 61, पृष्ठ 41)

❖ ❖ ❖

हम दूसरों में प्रीति के अंकुर पैदा कर सकते हैं और कालान्तर में महान् परिवर्तन भी। इतनी अनासक्ति, इतनी तटस्थता आवश्यक ही है। अन्यथा व्यक्ति स्वयं दु:खी होता है और दूसरों को भी दु:खी करता है।

(पत्र 62, पृष्ठ 42)

❖ ❖ ❖

आपके जीवन में यज्ञ-पुरुष के पूजन का भाव-सेवा का भाव रम जाये! कहाँ पर आप कितने उपयोगी हो सकते हैं, यह भाव आपके मन में उदय हुआ करे और आपका जीवन, अपने लिए, अपने परिवार के लिए उपयोगी हो जिनका आपसे वास्ता पड़ता है। व्यक्तिगत भाव को गौण करके दूसरों के हित कल्याण के भाव से विचारना और उस विचार को कार्यरुप में परिणित करना - यह ऐसे जीवन का रहस्य है। यह सुख है और हमें आध्यात्मिक सुख की ओर बड़ी तीव्रता से ले जाता है।

(पत्र 63, पृष्ठ 42)

❖ ❖ ❖

आध्यात्मिक साधना में कई उतार चढ़ाव आते हैं। उनमें शान्त रहना और पथ पर टिके रहना ही बड़ी महत्व की बात है। बिना भगवान् में

अटूट विश्वास के कि जो कुछ घटनाचक्र बाहर अथवा भीतर चल रहा है वह उसी की अनुमति से है उससे कल्याण के सिवा और कुछ हो ही नहीं सकता जीवन में शान्ति कहाँ: क्योंकि श्रीराम का हाथ हमेशा मेरे सिर पर है बिना अविश्वास के भगवान् से प्रार्थना करनी चाहिए, धैर्य तथा अटूट विश्वास के लिये। उनसे माँगनी चाहिए केवल मात्र उन्हें प्राप्त करने की अटूट इच्छा। (पत्र 66, पृष्ठ 44)

❖ ❖ ❖

कर्मयोगी का लक्षण ही है कि वह अकुशल कर्म से द्वेष नहीं करता, और कुशल कर्म में आसक्ति नहीं होती। सभी कर्म वह भली प्रकार से करता है – यही आदर्श उसके सामने रहता है। (पत्र 69, पृष्ठ 45-46)

❖ ❖ ❖

सार्वजनिक कार्यकर्त्ता को विशेष कठिनाई का सामना करना पड़ता है, इसमें सन्देह नहीं। **उसे अपने व्यवहार में निर्भय होना आवश्यक है।** (पत्र 70, पृष्ठ 46)

❖ ❖ ❖

जो सार्वजनिक कार्यकर्त्ता दूसरों को अपनी पवित्रता का सबूत देने की सोचता है, सम्भव यही है कि वह बहुत दिन कार्यक्षेत्र में न डट सकेगा। यदि दुनियाँ की बातों से डर है और यह इच्छा है कि सभी आपको पवित्र करके जानें और कहें तो यह एक असम्भावना है। बापू पर भी लाँछन लगाने वाले मिल जायेंगे। सबूत देने की चेष्टा अथवा इच्छा ही मेरी समझ में उल्टी बात है। **जो अपनी नज़रों में साफ है उसे आगे बढ़ना है अपने कार्यक्षेत्र में।** लोकापवाद से यदि वह अपने व्यवहार में कोई परिवर्तन आवश्यक समझे तो कर ले, परन्तु वह लोकहित के लिए ही। समाज सेवक को तो इस विषय में विशेष बलवान होना आवश्यक है।

(पत्र 70, पृष्ठ 46)

❖ ❖ ❖

जो कार्यकर्त्ता **अपने द्वेषकों को न केवल क्षमा ही कर सकता है उनसे बल्कि निरन्तर प्रीति तथा सेवा भी कर सकता है और अपने पथ पर डटा रहता है, अपने को निर्दोष सिद्ध करने का यत्न भी नहीं करता, उसका शोधन समय स्वयं कर देता है** और वही द्वेषक

प्रशंसक बन जाते हैं। यह अग्नि-परीक्षा है उसमें से गुज़रना होगा।
(पत्र 70, पृष्ठ 47)

❖ ❖ ❖

जो पवित्रता के पथ पर अग्रसर हो रहा है, जिसका भीतर शनैः-शनैः शुद्ध होता चला जा रहा है, वह आत्म-ग्लानि की अग्नि कभी अपने भीतर प्रज्ज्वलित न करेगा और न किसी दूसरे में उसकी चिंगारी रोपेगा। व्यक्ति को जानना है कि उसमें न्यूनतायें हैं। उसे जानना है कि दूसरों में भी न्यूनतायें हैं, साथ ही उसे जानना है कि हम सब दिव्य पथ के पथिक हैं और किसी दिन वहाँ पहुँचेंगे। न उसे अपने से ग्लानि करनी है न दूसरों से। **इस प्रगतिशील दृष्टिकोण** को लेकर उसे विकास पथ पर स्वयं अग्रसर होना है और दूसरों को भी करना है। आत्मग्लानि एक संहारात्मक शक्ति है, व्यक्तित्व में वैषम्य उत्पन्न करती है। (पत्र 70, पृष्ठ 47)

❖ ❖ ❖

मुझ में पाप हैं, परन्तु मैं जानता हूँ कि उनका अतिक्रमण भी होगा। मातृ शक्ति का स्पर्श उन्हें धो डालेगा। मैं जितना आगे बढ़ूँगा उतना ही निर्मल होता चला जाऊँगा। (पत्र 70, पृष्ठ 47)

❖ ❖ ❖

'शिवोऽहम्' वास्तविकता में आने वाली सम्भावना है। विकास की प्रगति अनिवार्य ही इसको ले आएगी। 'पाप है और पुण्य भी है' यह कोरी वास्तविकता है जो प्रति पल बदल रही है। और सच्ची प्रार्थना है दैवीशक्ति के प्रवाह को प्रतीत करते हुये अपने को उसमें छोड़ देना। **यह मूक प्रार्थना है।** (पत्र 70, पृष्ठ 47)

❖ ❖ ❖

सार्वजनिक कार्यकर्ता को यह बात समझ लेनी होगी कि समाज में कमियाँ हैं। जो समाज से घृणा करता है वह अपना तथा समाज दोनों का अहित करता है। सेवा तभी सम्भव है जब दोषों के होने पर भी प्रीति हो। (पत्र 70, पृष्ठ 48)

❖ ❖ ❖

यदि वह दूसरों के दोषों को अपनी झूठी निन्दा को सुनकर भी, अपने हृदय को अलिप्त रख सकता है, तभी वह सफल सेवक बन

पायेगा। (पत्र 70, पृष्ठ 48)

❖ ❖ ❖

काम सभी मंगलमय हैं, बस वह भगवान के अर्पण हो जाना चाहिये। यदि पूजा का भाव बना रहे तो कर्म भगवान को ही प्राप्त होते हैं। जो कुछ फलस्वरूप हो उसे भगवान का प्रसाद-मात्र समझना चाहिये।

(पत्र 73, पृष्ठ 50)

❖ ❖ ❖

एक बार मनोमालिन्य होने पर उसे सुधार सकना बहुत वीरता की, त्याग तथा अगाध प्रीति की आवश्यकता रखता है। अपने अहं को, अपने मान को जब तक मिटाने के लिए व्यक्ति तैय्यार ही न हो और अपनी रसना को पूर्णरूपेण मधुमयी न कर दे, तब तक सफलता होनी असम्भव है। (पत्र 75, पृष्ठ 51)

❖ ❖ ❖

आध्यात्मिक पथ के पथिक के सामने ऐसे अवसर परीक्षा रूप में आकर खड़े होते हैं। यदि इनके इस स्वरूप को समझ कर वह चलता है तो उसकी उन्नति अतीव वेग से होती है और यदि साधारण व्यक्तियों की तरह तू-तू मैं-मैं की लीला करता है तो वह उससे ऊपर उठ नहीं सकता। (पत्र 75, पृष्ठ 51)

❖ ❖ ❖

तृणादपि सुनीचेत तरोरिव सहिष्णुता।
अमानिना मानेन कीर्तनीयः सदा हरिः॥

– **चैतन्य महाप्रभु**

यह आदर्श भक्त के सामने रहता है। 'तृण से भी नीचा अपने को कर दे और वृक्ष की तरह सहनशील हो। स्वयं अमानी, परन्तु दूसरों को मान दे। ऐसे भाव में स्थित भगवान का स्मरण कीर्तन करें।'

(पत्र 75, पृष्ठ 51)

❖ ❖ ❖

अदले का बदला – वाली भावना मनुष्य को गिराती है। 'जो मैं करूँगी, कहूँगी और विचारूँगी उसके लिए मैं देनदार हूँ, जो अन्य करेगा उसके

लिए वह। यह सीधा साफ हिसाब है। (पत्र 75, पृष्ठ 51)

❖ ❖ ❖

अपनी आदतों को बदलने के लिए आवश्यक है – दृढ़ संकल्प और उसको पूरा करने के लिए त्याग के लिए उद्यत रहना। प्रायश्चित तथा क्षमायाचना – मान मिटाने के लिए बड़े गुणकारी हैं।

(पत्र 75, पृष्ठ 51)

❖ ❖ ❖

कमियाँ हम सभी में हैं, उनसे ऊपर उठने के लिये प्रयत्न करना तथा करवाना सर्वथा प्रशंसनीय है। (पत्र 78, पृष्ठ 53)

❖ ❖ ❖

अपनी वार्षिक आय का एक विशेष प्रतिशत अलग रख दिया करें और ऐसा समझें कि वह आपका नहीं है। (पत्र 79, पृष्ठ 54)

❖ ❖ ❖

भाव के आवेश को रोकना आवश्यक है। Sensitiveness से व्यक्ति बिना कारण के भी अपने को दु:खी कर लेता है। किसी घटना को दिल पर लगाना बिल्कुल निरर्थक होता है, जो व्यक्ति को करणीय है वह करने को तैय्यार हो जाये और व्यर्थ में दु:ख न करे यही सौम्यता का मार्ग है, सुख का पथ है। जिस प्रकार से हम दूसरों के बारे में बातें करते हैं ऐसे ही दूसरों को भी अधिकार है। कोई व्यक्ति दूसरों की जिह्वा को नहीं रोक सकता। अत: कहे का बुरा मानना ही न चाहिये।

(पत्र 80, पृष्ठ 56)

❖ ❖ ❖

क्रोध के प्रकट करने से, नफरत करने से लाभ नहीं होता किसी को भी, दूसरे सभी विकास की भिन्न सीढ़ियों पर हैं; शायद आप भी कभी वैसे रहे हों। (पत्र 81, पृष्ठ 57)

❖ ❖ ❖

हमें ब्रह्मचर्य के महत्व को अपने अन्तस्थल पर खूब दृढ़ता से अंकित कर लेना चाहिए। आत्मिक तथा लौकिक कल्याण इसके बिना सम्भव नहीं है। इस बात को समझकर दृढ़ संकल्प करना चाहिए कि मैं इस व्रत का पालन करूँगी। इन भावों को विशेष अंकित करने के लिए सभी

साध्वी स्त्रियों का, सीता तथा सावित्री जैसी देवियों के चरित्र का मनन करना चाहिए। (पत्र 82, पृष्ठ 58)

❖ ❖ ❖

भगवान से प्रार्थना करनी चाहिए कि प्रभो, हे जगजननी, हे माता, मुझे अपनी रक्षा में ले लो। मुझे बल प्रदान करो कि मैं अपनी पवित्रता को बनाये रखूँ। पतन के पथ से सदा दूर रहूँ। मुझे अपने में सच्चे विश्वास तथा श्रद्धा को प्रदान करो। भगवान के सामीप्य को सदा प्रतीत करने का यत्न करो, भावना करो कि वह हमेशा आपके समीप हैं और रक्षा करते हैं। (पत्र 82, पृष्ठ 58-59)

❖ ❖ ❖

अपने मन को शुद्ध रखने का सरल उपाय है कि काम करने में इतना व्यस्त रहना है कि और प्रकार के विचारों के लिए फुरसत न रहे। (पत्र 82, पृष्ठ 59)

❖ ❖ ❖

अपने खाने को जितना सादा तथा हल्का कर सकेंगी उतना ही अच्छा होगा। मिर्च, मसाले, प्याज, खटाई, मिठाई, राजसिक होने के कारण मन में विकार पैदा करने में सहायक होते हैं। (पत्र 82, पृष्ठ 59)

❖ ❖ ❖

पहिले-पहिले कुछ बुरा सा लगेगा परन्तु फिर इसी प्रकार के खाने में मज़ा आने लगेगा। जिह्वा तथा कर्मेन्द्रिय का अटूट सम्बन्ध है। (पत्र 82, पृष्ठ 59)

❖ ❖ ❖

मानसिक आहार को शुद्ध करना भी बहुत आवश्यक है। यदि हम पुस्तकें ऐसी पढ़ते हैं जिनमें विकार की चर्चा है, पाशविक प्रेम की चर्चा है तो हमारे में वैसे ही संस्कार उद्भूत होंगे और हमें पतन से बचना कठिन होगा। (पत्र 82, पृष्ठ 59)

❖ ❖ ❖

हमारा व्यवहार, उठना बैठना तथा बोलना चलना ऐसा होना चाहिए जिससे 'लज्जा' - स्त्री सहज लज्जा-टपके। हमारी वस्त्रभूषा ऐसी सादा हो कि न हमारे मन में तन की प्रधानता जागृत हो और न ही देखने वालों

पर ऐसा प्रभाव पड़े। नवीन ऊँचे आदर्शों द्वारा आप अपनी रुचियों को बदल सकती हैं। जो वास्तव में हमारे लिये हितकारी है वह हमें अच्छा लगना ही चाहिए। (पत्र 82, पृष्ठ 59)

❖ ❖ ❖

संगति पर ध्यान देना आवश्यक है। जहाँ पर विकार की सम्भावना हो उस रास्ते से अपने को दूर रखना ही बुद्धिमत्ता है। आग में हाथ डालने से जलना स्वाभाविक है, फिसलने वाली भूमि पर रपट जाना भी।

(पत्र 82, पृष्ठ 59-60)

❖ ❖ ❖

अन्तिम तथा सबसे महत्वपूर्ण सहायता है राम नाम। कोई सहायक न हो तो यह सहायक है। यह हर समय संगी है। मन में गुँजा दें और तन में गुँजा दें और आड़े समय में इसका स्मरण करें - भगवान से नाममयी प्रार्थना करती हुई उसके चरणों में झुक जायें। भगवान आपकी रक्षा करें।

(पत्र 82, पृष्ठ 60)

❖ ❖ ❖

जो व्यक्ति विचारों तथा बुद्धि की आसक्तियों को एक दम छोड़ने के लिये तैय्यार रहता है, जिसमें विशाल सहानुभूति होती है, दूसरे को समझने की इच्छा भी होती है, वही दूसरों की बातों को समझ सकता है और उनको प्रभावित कर सकता है। और स्वयं प्रभावित हो सकता है। यह लचीलापन आगे बढ़ने के लिये अनिवार्य प्रतीत होता है। इसके साथ ही साथ दृढ़ता की भी आवश्यकता है। इसके अभाव में व्यक्ति बिल्कुल बेकाम का होता है। (पत्र 83, पृष्ठ 60)

❖ ❖ ❖

भजन में मैं नाम को अधिक महत्व देता हूँ। बनिस्पत लीलाओं के चिन्तन के। (पत्र 84, पृष्ठ 61)

❖ ❖ ❖

जाप में श्वास प्रश्वास को बदलने की चेष्टा नहीं करनी। नाम के साथ जोड़ने का भी प्रयत्न नहीं करना। नाम की धारा को चलने दें और उधर श्वास प्रश्वास के ध्यान का भी जल्दी ही अतिक्रमण कर जायेंगे। नाम में गायब हो जायेंगे। आने वाले संकल्प विकल्पों की परवाह मत

कीजियेगा। अपने मन तथा तन को शिथिल रखियेगा। वह धीरे धीरे शान्त होते चले जायेंगे। धैर्य से सभी समस्यायें अवश्य सुलझ जायेंगी।

(पत्र 84, पृष्ठ 61)

❖ ❖ ❖

शान्ति तथा अशान्ति का फेर साधना क्रम में एक अवस्था तक चलता ही है। जैसे साधक समर्पण का पाठ पढ़ता चला जाता है, जैस-जैसे प्रभु के वरद स्पर्श की प्रतीति सतत उसकी संगिनी होती चली जाती है, अशान्ति की घड़ियाँ पतली पड़ती चली जाती हैं और फिर लुप्त भी होती चली जाती हैं। अनन्य विश्वास का, अटूट निर्भरता का, तथा परम धैर्य का खेल है। भगवान के सान्निध्य को प्रतीत करना अनिवार्य है। इसी से भगवत कृपा का प्रवाह हम पर प्रेरित होने लगता है, अधिकाधिक वेग से, और हम सदैव के लिये कृतकृत्य होते चले जाते हैं। सजग होकर भीतर की अशान्ति से ऊपर उठ जाना होगा और सामयिक शान्ति से भी। यही साधना का सिद्धान्त है। (पत्र 86, पृष्ठ 62)

❖ ❖ ❖

चिन्ताओं तथा परेशानियों से जब तक आप घबरायेंगी मन के संकल्प विकल्पों का अवरोध करने का यत्न करेंगी, वह आपके लिये बाधा उपस्थित करेंगे ही। छुट्टी मिलेगी तभी जब आप उनके क्षेत्र से ऊपर उठ जायेंगी, अपने उज्ज्वल भाव में, भगवान के अन्तरंगित्व में स्थापित हो जायेंगी और उनकी उपेक्षा करेंगी। समय पाकर मन भी अपने स्वभाव को बदल डालेगा।

(पत्र 86, पृष्ठ 62-63)

❖ ❖ ❖

व्यक्ति के भीतर अतुल सामर्थ्य है। यह उसे जानता नहीं। अपने को पहिचानता नहीं। इसीलिये व्याकुल हुआ भटकता है। (पत्र 87, पृष्ठ 63)

❖ ❖ ❖

'श्री राम' नाम के प्रसाद से व्यक्ति जगने लगता है। मानो सोता हुआ सिंह जग जाये। इसी से भगवान का कृपा प्रसाद प्राप्त होता है। नाम खूब स्मरण कीजियेगा। नाम के स्मरण से, नाम का अनन्य अवलम्बन लेने से भागवती कृपा का – महाशक्ति का – प्रवाह व्यक्ति में प्रेरित होने लगता है। और शीघ्र ही वह कृतकृत्य हो जाता है। (पत्र 87, पृष्ठ 63)

❖ ❖ ❖

आदर्श तथा 'वर्तमान' परिस्थिति में बहुत काल तक एक अन्तर बना रहना स्वाभाविक है। पूर्णत्व की अवस्था में ही दोनों एक हो सकते हैं। जैसे ही हमारा कदम आगे बढ़ता है वैसे ही हमारा आदर्श भी ऊँचा हो जाता है, हो जाना चाहिये। हिमालय की एक चोटी पर चढ़ने पर जो नीचे से सर्वोच्च दिखाई पड़ती थी, दूसरी उससे और ऊँची चोटी दिखाई पड़ने लगती है। (पत्र 88, पृष्ठ 64)

❖ ❖ ❖

इसी प्रकार की दशा मनुष्य जीवन में होनी नितान्त स्वाभाविक है। अत: आदर्शों पर ध्रुवता की छाप लगाने का काम न करना चाहिये। अपितु वर्तमान का सदैव अतिक्रमण करने को उद्यत रहना आवश्यक है। यही जीवन में प्रगतिशीलता है। हृदय में, मस्तिष्क में, आत्मा में तथा तन में, समाज तथा देश, **सभी क्षेत्रों में व्यक्ति को आगे बढ़ना सीखना है।** स्थिरता केवल मात्र दिशा की ही हो सकती है, इससे अधिक स्थिरता निर्जीवता होती है। (पत्र 88, पृष्ठ 64)

❖ ❖ ❖

सेवा न केवल युगधर्म है, यह तो विकास का नियम ही है, इसके बिना भी व्यक्ति सेवा करता है। परन्तु समाज का काम करने वाला प्रत्येक व्यक्ति सेवा करता है, अध्यापक भी और बनिया भी यदि वह अपने काम को ठीक करता है तो। इसमें क्या सन्देह? एक लेखक भी समाज की सेवा करता है, और मेरी समझ में एक जज और जेलर भी। सेवा इतनी व्यापक वस्तु है। इससे हमारे स्वधर्म के लिये हमेशा गुंजाइश है। राजनैतिक क्षेत्र में भी समाज का प्रत्येक व्यक्ति अपने ढंग से कुछ कर सकता है। (पत्र 88, पृष्ठ 64)

❖ ❖ ❖

एक अवस्था तक अभिमान व्यक्ति में विकास के लिये आवश्यक होता है। स्वाभिमान के बिना प्राय: लोगों के लिये काम बेगार हो जाता है। परन्तु, व्यक्ति आगे बढ़ते बढ़ते एक स्थिति को प्राप्त कर सकता है, जब स्वाभिमान के अभाव में भी काम बेगार नहीं होता। (पत्र 88, पृष्ठ 64)

❖ ❖ ❖

क्रिया मात्र, शक्ति का आनन्दमय विलास हो जाता है। वह कर्म की विशेषता पर निर्भर नहीं, वह तो व्यक्ति की विशेषता पर निर्भर है। पूर्ण अवस्था में कर्म सहज होता है जैसे फूल का खुशबू देना अथवा सूर्य का प्रकाश देना इसमें सन्देह नहीं। (पत्र 88, पृष्ठ 64)

❖ ❖ ❖

अभिमान से डरियेगा नहीं। बस इसे पहिचान लीजियेगा। जहाँ पर यह प्रकट होता है वहाँ चोर की भाँति न हो, आपसे छिपा न रहे।

(पत्र 88, पृष्ठ 65)

❖ ❖ ❖

ज्यों ही आप अपने को भागवती शक्ति के आगे खोलते चले जायेंगे, उसको अपने में क्रिया करने देंगे, आप स्वर्ण के सदृश चमकीले, हिम के समान शुद्ध-सरल तथा स्फटिक की भाँति उज्ज्वल होते चले जायेंगे, विश्वास जानियेगा। (पत्र 88, पृष्ठ 65)

❖ ❖ ❖

प्रार्थना भागवती शक्ति का आवाहन है, प्रार्थना (अपने आपको) भागवती शक्ति की क्रिया के लिये खोल देना है। प्रार्थना भागवत सम्पर्क को प्रतीत करना है और पूर्णतया उसका हो जाना है। प्रार्थना वह है जिसके द्वारा भागवती शक्ति का आवाहन-अवतरण होता है। अतः नाम स्मरण भी प्रार्थना ही है और भाव की तरंग में प्रभु चरणों से लिपट जाना, उसकी गोदी तक पहुँच जाना, आलिंगन में प्रभु से एक हो जाना-यह सभी प्रार्थना ही है। नाम का स्मरण मन्त्रमय प्रार्थना है और यह दूसरी भावमयी।

(पत्र 88, पृष्ठ 65)

❖ ❖ ❖

दूसरों की कमज़ोरियों और अच्छाईयों को समझने के लिए व्यक्ति को अपने आपे से ऊपर उठ कर सोचना चाहिए, जहाँ पर हम प्रभावित होते हैं किसी व्यक्ति के व्यवहार से, वहाँ हमारी समझ साफ नहीं रह पाती, अतः अपने से होने वाले किसी के व्यवहार का विचार न करके सोचना सीखें। (पत्र 94, पृष्ठ 75)

❖ ❖ ❖

त्रुटियाँ-कमज़ोरियाँ तो व्यक्ति में रहती ही हैं। उसके प्रयत्न करने से

भी तत्काल चली नहीं जाती, हम स्वयं कोशिश करते हैं तो भी एक दम अपनी कमज़ोरियों को दूर नहीं कर पाते, **अतः दूसरों को मापते समय खूब उदारता से परख लेना चाहिए,** नहीं तो हम असत्यता में पड़ जायेंगे। ग़लत और अनुदार धारणा दूसरों के बारे में बना ली जायेगी। उससे भीतर राग-द्वेष की अग्नि प्रज्ज्वलित हो उठेगी। (पत्र 94, पृष्ठ 75)

❖ ❖ ❖

कोई व्यक्ति अपनी परिस्थिति के लिए उचित व्यवहार भी क्यों न कर रहा हो यदि वह व्यवहार हमारे मनोनुकूल नहीं बैठता तो हम उस व्यक्ति को बुरा समझने लग जाते हैं। कारण? **हम सारी दुनियाँ को अपनी रुचि और सुख के पैमाने से मापते हैं।** यह ठीक नहीं।

(पत्र 94, पृष्ठ 75)

❖ ❖ ❖

यदि हम इतनी बात का ख़्याल रखें तो बहुत से लोग जो हमारे कारण दु:खी होते हैं वह दु:खी न हों और अनजाने ही जो हम दूसरों को बुराई की ओर दौड़ाते हैं न दौड़ायें। (पत्र 94, पृष्ठ 75)

❖ ❖ ❖

अपने को शिथिल करके यदि मन शब्द के द्वारा आकृष्ट हो तो उसे उसमें लगा देना चाहिये और स्मरण करते चले जाना चाहिये। उस प्रभु की समीपता को प्रतीत करने का यत्न करें, भावना करें और अपने को उस पर पूर्णतया छोड़ देना स्वीकार करें। यही समझना चाहिये कि हम उस जगज्जननी विश्वमाता की गोद में हैं और वह हमें अपने समीप अति समीप लिये जा रही है। (पत्र 95, पृष्ठ 76)

❖ ❖ ❖

व्यक्ति स्वस्थ रहना चाहे और उसकी कीमत देने को तैय्यार न हो तो स्वस्थ कैसे रह सकता है? (पत्र 96, पृष्ठ 77)

❖ ❖ ❖

जीवन के भीतर गम्भीरता लाना, सुख दु:ख को सहन करने की योग्यता प्राप्त करना बहुत आवश्यक है। **सहनशीलता से व्यक्ति सुखी रह सकता है।** असहनशील व्यक्ति के लिये सुख कहाँ? (पत्र 96, पृष्ठ 77)

❖ ❖ ❖

बाहर के प्रभावों, बातों को, व्यवहार को सहन करना होगा यह सोचकर कि जीवन में यह सब कुछ होता ही है। यह जीवन की पूर्णता के लिये आवश्यक भी है और इससे इसलिए कोई नहीं बच सकता।

(पत्र 96, पृष्ठ 77)

❖ ❖ ❖

मैं समाज तथा सामाजिक जीवन को आध्यात्मिक साधना के लिये अनिवार्य रूप से आवश्यक समझता हूँ। एकांगी साधना अथवा वह साधन जो कि व्यक्ति के विकास को एकांगी कर देता है मुझे पसन्द नहीं है।

(पत्र 97, पृष्ठ 78)

❖ ❖ ❖

कैम्पों को मैंने एक बहुत उपयोगी साधन प्रतीत किया है। और मैं उनको अधिकाधिक उपयोगी बनाना भी चाहता हूँ। (पत्र 97, पृष्ठ 78)

❖ ❖ ❖

आज्ञाकारिता को मैं प्रथम स्थान नहीं देता हूँ। क्योंकि मैं इसके खतरे को समझता हूँ। यह प्रेम के द्वारा, आन्तरिक भावना द्वारा तथा स्व-बोध के द्वारा ही प्रेरित हो। (पत्र 97, पृष्ठ 78)

❖ ❖ ❖

कैम्प की खामियों और विशेषताओं को मैंने प्रतीत किया है, खामियों की प्रतीति करते हुए भी और उनको दूर करने की क्षमता होते हुए भी अभी उनको सहन करना ही आवश्यक प्रतीत होता है।

(पत्र 97, पृष्ठ 78)

❖ ❖ ❖

ज्यों-ज्यों चेतना ऊँचे-ऊँचे केन्द्रों में क्रियाशील होती है व्यक्ति का जीवन स्वयं बदलता जाता है, और विचार भी। अड़चन होती है स्वभाव से। मन, बुद्धि, इन्द्रियाँ पुराने रास्ते चलना चाहती हैं। जो व्यक्ति परिवर्तन के लिये उद्यत हो जाता है, और रहता है वह जल्दी बदलता है अन्यथा देरी लगती है। अत: प्रत्येक क्षेत्र की आसक्ति से ऊपर उठ जाने की अभीप्सा रहनी चाहिये। (पत्र 97, पृष्ठ 79)

❖ ❖ ❖

दूसरों की बातों को शान्तिपूर्वक सुनना, उसमें ग्राह्य को ग्रहण करना,

उसके पीछे जो ज्ञान है उसकी सीमाओं को मापना और हँस देना, अनसुना कर देना – जहाँ वह अग्राह्य है, यह कला सीखनी होगी।

(पत्र 100, पृष्ठ 82)

❖ ❖ ❖

एक बार रख तो दो अपनी सभी मान्यताओं को, सेवाकाँक्षाओं को माँ के चरणों पर और अन्तरात्मा से पुकार उठो ''माँ तू जो करना चाहे कर दे, मैं अब तेरा'' आकाश निर्मल हो जायेगा। भीतर शान्ति हो जायेगी और बाहर भी पथ सूझेगा। (पत्र 100, पृष्ठ 83)

❖ ❖ ❖

अपने विचारों के उपयोग से भावों की तरंगों को प्रभु की ओर प्रेरित करने से, उसका हम जितना सान्निध्य प्रतीत करने लगते हैं, उसका भरोसा करने लगते हैं, और उसके ऊपर अपना आपा छोड़ने लग जाते हैं, उतनी ही शान्ति होती है। (पत्र 102, पृष्ठ 85)

❖ ❖ ❖

वास्तव में होता भगवान की कृपा से है, गुरु कृपा भी उसी का एक बहाना है, परन्तु हम पुरुषार्थ का तिरस्कार नहीं कर सकते। उदाहरण देता हूँ – खेती होती तो पानी से है, परन्तु जो किसान खाई खोदकर अपने खेत का सम्बन्ध नहर के साथ जोड़ने को तैय्यार नहीं है, वह पानी रहने पर भी खेती पैदा नहीं कर सकता। व्यक्ति के बस की जो बात हो वह तो उसे करनी ही चाहिये, भगवान अपना काम अवश्य कर देंगे, कृपा करेंगे ही। हरि कृपा की चर्चा ही करने और साधन न करने से कुछ नहीं होगा। (पत्र 103, पृष्ठ 85)

❖ ❖ ❖

भूमि मेहनत से तैय्यार की जाती है। उसके बिना बरसने पर कुछ उगेगा नहीं। (पत्र 103, पृष्ठ 85)

❖ ❖ ❖

भगवान से हमारे अनेक नाते हैं, जो नाता सुखद और आकर्षक प्रतीत हो उसे प्रधानता दीजिएगा। राम हमारी माँ भी है बाप भी, सखा भी, और स्वामी भी, जैसे आप मानें। (पत्र 103, पृष्ठ 85-86)

❖ ❖ ❖

हमारी साधना में प्रधान अवलम्बन नाम ही है। इसके अतिरिक्त जो भी मूर्ति आकर्षित करे उसका चिन्तन आप कर सकते हैं परन्तु वास्तव में यह है बच्चों का खेल ही। महत्व वाली चीज़ तो नाम ही नाम है। नाम की तरंग में गोता लगाने से व्यक्ति निहाल हो जाता है।

(पत्र 103, पृष्ठ 86)

❖ ❖ ❖

स्वामी विवेकानन्द ज्ञान पथ के पथिक थे। दूसरे हमें इच्छा का त्याग तो करना ही होगा। इच्छा तो भगवानमय होने की रखनी चाहिए। इसका यह अर्थ नहीं कि हम छोड़ छाड़ कर अलग हो जायें। हमें सभी कुछ उसी से स्वीकार करना होगा और अपने कर्म को भी उसी के अर्पण करना होगा। तब सभी जीवन साधनामय हो जायेगा।

(पत्र 103, पृष्ठ 86)

❖ ❖ ❖

भीतर होने वाली उथल-पुथल को, आँधियों को, गम्भीरता पूर्वक देखते चले जाइयेगा। हम सभी कुछ नहीं कर सकते हैं। अपनी शक्ति को उस प्रभु के समर्पण कर दीजियेगा और उससे यही माँगिये कि जो चाहे आप से काम ले। व्यक्ति तो उसकी लीला में एक नन्हा सा यन्त्र बन सकता है, इसी में सौम्यता है। सौन्दर्य भी है। (पत्र 112, पृष्ठ 91)

❖ ❖ ❖

वास्तव में व्यक्ति नाम चाहता है, कीर्ति चाहता है, और अपनी सेवा की सफलता चाहता है। **अपनी सेवा की भावना को प्रीति से भरकर सभी की ओर प्रवृत्त करियेगा** जिनसे आप मिलते हैं भले ही कोई छोटा हो अथवा बड़ा और प्रार्थना कीजियेगा कि प्रभु मुझे सच्चा सेवा सदन बना लो। (पत्र 112, पृष्ठ 91)

❖ ❖ ❖

जीवन एक संघर्ष है और परिवर्तन इसका स्वभाव है। इस संघर्ष के बिना, परिवर्तन के बिना विश्वास असम्भव है। उसे आनन्द की स्थिरता को यहाँ न ढूँढना चाहिये अन्यथा वह निराश होगा। **विकास की ऊँची अवस्थायें ही आनन्द की स्थिर अवस्थायें हैं।** स्वर्ग का स्थायित्व न यहाँ है न वहाँ। भ्रम सा है। प्यारे, **जीवन के पथ में अग्रसर होने पर, विकसित**

होने पर प्रेम तथा निस्वार्थता की सीमायें बढ़ती चली जाती हैं। मानव सामर्थ्य की सीमायें हैं, इनसे इन्कार नहीं किया जा सकता है, परन्तु उनके कारण व्याकुलता भी मूर्खता ही है। आगे बढ़ते जाइयेगा। वह अवसर भी कभी आयेगा। (पत्र 112, पृष्ठ 92)

❖ ❖ ❖

जाप के साथ सौर मण्डल का चिन्तन करें और उसमें नाम के 'राम' अक्षरों का साथ में जाप चलता रहे। और विचार करने की बिल्कुल आवश्यकता नहीं। पहले ही नमस्कार आदि कर लेना चाहिये। (पत्र 114, पृष्ठ 93)

❖ ❖ ❖

वैवाहिक जीवन में प्रवेश की पहली समस्या पति-पत्नी के परस्पर नाते की है। यहाँ पर सामंजस्य जीवन को मधुर कर सकता है और असामंजस्य आने वाले जीवन को एकदम नीरस। (पत्र 116, पृष्ठ 95)

❖ ❖ ❖

एक दूसरे को समझते हुए प्रीति का निर्माण करना है। दोष सभी में होते हैं और दोषों के प्रति उदारता भी होनी चाहिये। दोषों की चर्चा, अथवा सुधार की ओर प्रवृत्ति, घर को स्कूल बनाकर नीरस कर देते हैं। सुधार को हमें थोपने का यत्न नहीं करना, उसे उदारता से देखना है। पारस्परिक सम्बन्ध ही उसमें परिवर्तन कर देगा।(पत्र 116, पृष्ठ 95)

❖ ❖ ❖

मैं तो गृहस्थ जीवन को साधना का क्षेत्र समझता हूँ। आत्म त्याग का पाठ गृहस्थ जीवन में बलात्कार से व्यक्ति को सिखाया जाता है। **पति पत्नी का नाता एक त्याग की आधारशिला होती है।**

(पत्र 116, पृष्ठ 95)

❖ ❖ ❖

हम इस आदर्श को सामने रखें कि गृहस्थ जीवन सुख-भोग के लिये नहीं है, अपितु अध्यात्म विकास की साधना का एक क्षेत्र है तो हम और ही तरह से जीवन को समझने लगेंगे। जीवन की चोटें हमें दुखी न कर सकेंगी। और संसार की अनुभूतियों से हम बहुत अधिक सीख सकेंगे। जीवन की खेती हमें कहीं अधिक फल देगी। सुख तथा दुःख व्यक्ति

को दोनों ही आगे ले जाते हुए प्रतीत होंगे। (पत्र 116, पृष्ठ 96)

❖ ❖ ❖

जहाँ पर गृहस्थ जीवन भोग का क्षेत्र बन सकता है वहीं पर संयम-सिद्धि का अभ्यास स्थल भी। (पत्र 116, पृष्ठ 96)

❖ ❖ ❖

'काम' की वृत्ति तो व्यक्ति को अन्धा कर देती है। स्त्री को भी और पुरुष को भी। दोनों अपने और इस शक्ति के दिव्यत्व को भूल जाते हैं। परन्तु हमें उस चेतना के ऊँचे आदर्श की ओर बढ़ना है। वहाँ 'काम' अपनी पाशविक प्रवृत्ति को खो बैठेगा। (पत्र 116, पृष्ठ 97)

❖ ❖ ❖

अगर हमें काम से ऊपर जाना है तो अपनी वृत्ति को किसी ऊँचे लक्ष्य पर केन्द्रित करना होगा। भगवान की समीपता को लाभ करना होगा। (पत्र 116, पृष्ठ 97)

❖ ❖ ❖

विकारों के लिये हमें व्याकुल नहीं होना, अपने को कोसना भी नहीं, और उनसे घबराना भी नहीं। इस पथ में प्रतिष्ठित होने पर विकार स्वत: शान्त होने लगते हैं। (पत्र 116, पृष्ठ 97)

❖ ❖ ❖

अलग कमरे में सोना, नाम की ध्वनि, नियमित खान-पान, पारस्परिक संकोच को दूर कर देना, जिसमें नवीनता की सी बात न रहे, समुचित व्यायाम, भ्रमण आदि जीवन के ऊँचे आदर्श को अपने में तथा अपनी पत्नी में जागृत करना यह सभी बातें सहायक हो सकती हैं। (पत्र 116, पृष्ठ 97)

❖ ❖ ❖

अपने को सुखी तथा शान्त रखने का तरीका क्षमाशील होता है। दूसरे के उपकारों का स्मरण और प्रतीत होने वाले अपकारों का पूर्ण विस्मरण। जो नाराज होने के लिये तैय्यार ही नहीं उसे कौन नाराज कर सकता है और मानसिक खेद भी उसे कैसे होगा? जो ऐसा उदार व्यक्ति है वही सहानुभूति का पात्र होता है, दूसरों का प्रेम पात्र भी और उसका जीवन ही केवल मंगलमय नहीं होता उसके आस पास भी आनन्द तथा सुख

बरसा करता है। (पत्र 119, पृष्ठ 101)

❖ ❖ ❖

हम अपने को अपने व्यक्तित्व से ऊँचा उठा सकते हैं उतना ही अपने को अधिक समझ पाते हैं और दूसरों को भी। बिना इसके अपने गुण दोषों का – कमज़ोरियों तथा शक्तियों का भी बोध नहीं हो पाता।

(पत्र 120, पृष्ठ 101)

❖ ❖ ❖

उसके अधिकाधिक समीप होना ही इसके लिये एकमात्र सुरक्षित उपाय है। बालक की तरह सरल होकर सच्चे होकर माँ के सामने हो जाओ और दूसरों से व्यवहार करते समय माँ की समीपता को मत छोड़ो। हमेशा ही माँ के सम्मुख बने रहो। उससे दूर होते ही सरलता और सच्चाई गायब हो जायेगी। उनका स्थान चतुराई ले लेगी और व्यक्ति गड़बड़ में पड़ जायेगा।

(पत्र 120, पृष्ठ 101)

❖ ❖ ❖

जब हम अपनी सभी आकाँक्षाओं को, रुचियों तथा इच्छाओं को सचमुच माँ के समर्पण कर देते हैं "तेरी इच्छा हो तो पूरी कर, न हो तो न कर, अब से यह मेरी इच्छा नहीं है।" ऐसा सोचते हुये, तो हमारा तो बोझा उतर जाता है, हम अपने को "अणोरणीयान्" प्रभु से प्रतीत करते हैं और यह सभी इच्छायें माँ की हो जाती हैं। वह अपने विशाल धैर्य पूर्ण तरीके से उन्हें पूर्ण कर डालती है। (पत्र 122, पृष्ठ 103)

❖ ❖ ❖

जीवन क्या है? इस प्रश्न का स्थाई उत्तर बुद्धि दे ही न पायेगी। इसके परे जाने पर ही कुछ समझ आनी आरम्भ होती है। जितना हमारा दृष्टिकोण विकसित होगा, जितनी अधिकाधिक हम बातों को अनुभव कर पायेंगे तथा समझ पायेंगे उतना ही सत्य के समीप हो पायेंगे। जीवन की प्रत्येक घटना का अधिकाधिक उपयोग करना चाहिये। वह हमें जो कुछ सिखाती है उसे जितनी जल्दी हम सीखेंगे उतनी ही तेज़ी से हम आगे बढ़ेंगे। सत्य कभी न कभी भली प्रकार से प्रगट होगा ही इस बात का धैर्य रखना चाहिये। फिर घबराहट न होगी और सभी मस्ती ही मस्ती है।

(पत्र 123, पृष्ठ 104-105)

❖ ❖ ❖

वह 'अज्ञात शक्ति' जो अन्तस्तल में स्फुरित होती है और जो जीवन को बदलना चाहती है, उसके आगे अपने को उत्तरोत्तर समर्पण करते चले जाना है। धीरे-धीरे वह शक्ति अपनी क्रिया प्रबल करती चली जायेगी और जीवन की दिशा को ही बदल देगी। (पत्र 125, पृष्ठ 106)

❖ ❖ ❖

सायं प्रातः नियमित रूप से बैठना आरम्भ करियेगा। यदि आपको रुचे तो मैं आपको 'राम' का स्मरण करने की सलाह दूँगा। 'राम' से हम उस सर्वशक्तिमय प्रभु को समझते हैं जो इस विश्व की विकासकारिणी शक्ति का अधिष्ठाता है और हमारा चैतन्यभाव से पिता है। नाम का मन ही मन स्मरण करियेगा, प्रातः सायं बैठकर। करते करते यदि नाम लुप्त हो जाये तो कोई चिन्ता की बात नहीं। शरीर तथा मन की शिथिलता जितनी हो सकेगी अच्छा होगा। इससे आप तीव्रता से आगे चलने लगेंगे।

(पत्र 125, पृष्ठ 106-107)

❖ ❖ ❖

चलते फिरते में, उठते बैठते में भी नाम का स्मरण हितकर होगा। करने से ही और इस विषय में अधिक बातें सूझने लगेंगी।

(पत्र 125, पृष्ठ 107)

❖ ❖ ❖

आत्मसमर्पण की गहरी भावना को बनाये रखने का यत्न कीजियेगा। अपनी इच्छाओं को उसके आगे समर्पण करते चले जाइये। 'तेरी इच्छा पूर्ण हो।' (पत्र 125, पृष्ठ 107)

❖ ❖ ❖

आध्यात्मिक साधना में स्थितियाँ बदला करती हैं। जैसे चलती गाड़ी में दृश्य बदलते हैं, ऐसे ही। परिवर्तन के लिये तैय्यार रहना चाहिये। भागवती शक्ति पथ प्रदर्शन करती हुई तो चलेगी ही। (पत्र 125, पृष्ठ 107)

❖ ❖ ❖

अपने को समर्पण करने का अर्थ कार्यों में ढीलापन तथा अनियमितता कदापि नहीं। (पत्र 125, पृष्ठ 107)

❖ ❖ ❖

हम स्वयं बुद्धि से परे हैं। हृदय में भी उद्वेग हो, प्राण में भी उद्वेग

हो और बुद्धि में भी; परन्तु यदि हम स्वयं संयम को चाहते हैं तो सभी उद्वेगों को शान्त होना होगा। कुछ देर रहकर शान्त हो जायेंगे।

(पत्र 126, पृष्ठ 108)

❖ ❖ ❖

प्राय: व्यक्ति अपनी स्थिति को भूल जाता है, उसकी अनुमति के बिना कर्म असम्भव है। ग़लती प्राय: यह होती है कि इन उद्वेगों में हम अपने अस्तित्व को ही खो बैठते हैं। प्रश्न यह नहीं कि मन मचलता है, यह भी प्रश्न नहीं कि प्राण पुलकित होता है, प्रश्न है कि मैं क्या करना चाहता हूँ। यदि मैं संयम चाहता हूँ तभी तो होगा, सभी को मेरी आज्ञा का पालन करना होगा। अपने समर्पण की वृत्ति को जागृत करना होगा। जैसे-जैसे भागवत सानिध्य प्राप्त होता जायेगा त्यों-त्यों व्यक्ति यह स्वत: प्रतीत करेगा, कि काम अपने बल से निरस्त हो रहा है। यह धीरे-धीरे हो सकेगा। इसमें आँधियाँ भी आयेंगी, इसमें सन्देह नहीं। परन्तु अपने विश्वास को न खोना होगा और आगे बढ़ते चले जाना होगा। अपने विचार को काम विकार पर केन्द्रित करना इस बाजी को हारना है। **संयम सहज स्वाभाविक होना** चाहिये और यह इस प्रकार करने से होगा, अपने आदर्श को अपने सामने रहने देना चाहिये। **भगवान के समीप होने का यत्न करना** चाहिये। अन्तिम विजय में विश्वास रखना चाहिये। बीच की अवस्था में **अपूर्णत्व को भी स्वाभाविक जानना चाहिए**। यही रास्ता है।

(पत्र 126, पृष्ठ 108)

❖ ❖ ❖

याद रखियेगा कि सभी समस्याओं का हल आप एक ही दिन में क्या एक वर्ष में भी न कर पायेंगे। धैर्य से चलियेगा। परिस्थितियों को देखकर चलियेगा। जीवन की प्रगति और विचित्र अनुभूतियाँ ही स्वत: जीवन में कई परिवर्तन ले आती हैं। (पत्र 126, पृष्ठ 109)

❖ ❖ ❖

आपको क्या-क्या बनना है इस विषय में हमें स्वयं निश्चय नहीं करना है। उसका हो जाना है और फिर वह जो चाहे आपको बना दे। चाहे तो फूल बनाये, चाहे खाद और चाहे तो उन दोनों का स्वामी माली और रसिक। यही अनवरुद्ध विकास का पथ है। (पत्र 131, पृष्ठ 112)

❖ ❖ ❖

कर्म की आसक्ति धीरे-धीरे जाती है। इसके दूर रहने का तरीका है काम करना और करते हुए उस आसक्ति को भी पहिचानते रहना। धीरे-धीरे जैसे आप आगे बढ़ेंगे यह क्षीण होती चली जायेगी।

(पत्र 131, पृष्ठ 112-113)

❖ ❖ ❖

बढ़ती हुई भागवती श्रद्धा व्यक्ति के पुरुषार्थ में समता और सौम्यता लाती है और उसके पुरुषार्थ का फल कई गुणा अधिक हो जाता है। जब तक वह समर्पण नहीं सीख पाता तब तक अहं ही उद्देश्य रहता है, प्रभु उद्देश्य नहीं होते-चोट लगती है, परन्तु वह समर्पण के पाठ को पढ़ाने के लिये ही। (पत्र 131, पृष्ठ 113)

❖ ❖ ❖

अशान्ति का कारण है आसक्ति-ममता। इसे निकालकर प्रभु चरणों में रख दीजियेगा। सभी को समान रूप से अपना समझने की कोशिश कीजियेगा। यही प्रभु से माँगियेगा तो शान्ति होगी। स्वयं उसके होने से सभी कुछ और सभी कोई भी व्यक्ति के लिये उसका हो जाता है। जहाँ आसक्ति है, वहीं चिन्ता है। **चिन्ता आसक्ति की आवश्यक सूचना है**। चिन्ता बिना आसक्ति भगाये भागेगी नहीं। (पत्र 132, पृष्ठ 114)

❖ ❖ ❖

शान्ति एक बड़ी कीमत माँगती है। जो कुछ अपना है और जिस किसी को हम अपना समझते हैं, सभी होम कर देना होगा। **आज से मैं प्रभु की और प्रभु मेरे, मैं सबकी और सभी मेरे**। इस स्थिति को प्राप्त करना, शान्ति की आवश्यकता है। यह परम संन्यास है, परम यज्ञ है, परम त्याग और तप है। (पत्र 132, पृष्ठ 114)

❖ ❖ ❖

कठोरता का इलाज है - आहत ही न होना, जलन ही न प्रतीत करना, व्याकुल ही न होना और अपनी बुद्धि के अनुसार बरतना, बिना कठोरता की परवाह किये हुये। यह व्यवहार दूसरों को बदल सकता है।

(पत्र 132, पृष्ठ 114)

❖ ❖ ❖

दूसरे यह भी मैं आवश्यक समझता हूँ कि हमें अपनी दुर्बलताओं

को भी अपने भीतर झाँक कर देखना चाहिये। भगवान से प्रार्थना करनी चाहिये कि वह दीखें और हम उनसे ऊपर उठते चले जायें-जब दोनों ओर से इस प्रकार का प्रयत्न होता है, जब दोनों ओर से यह समझा जाता है कि न हम देवता हैं और न वह दूसरे देवता हैं तो लोक-व्यवहार में अपूर्णता होने पर सौम्यता हो सकती है। (पत्र 132, पृष्ठ 114)

❖ ❖ ❖

राम नाम सत्यमेव बहुत लाभप्रद है। मैंने इसे अपने में और अपने अनेक मित्रों में अनुभव किया है। इससे व्यक्ति में नूतन चेतना की जागृति हो जाती है और व्यक्ति बिना प्रयत्न ही सहज में बदलता चला जाता है। उसके विचार और आचार दोनों में ही परिवर्तन होने लगता है। नाम का खूब लगन से प्रेम से सेवन कीजियेगा। (पत्र 135, पृष्ठ 116)

❖ ❖ ❖

आन्तरिक स्थिरता के लाभ होते ही व्यक्ति कर्मक्षेत्र में कूदने की इच्छा अनुभव करता है। फिर वह क्रिया में भी आन्तरिक शक्ति और भागवती शक्ति की क्रिया को अविचल रूप में अनुभव करने लगता है। यही ऊँची स्थिति है। शरीरादि में खूब क्रिया हो और अन्त:स्थल में ठोस अबाध्य शक्ति। इसी आदर्श को सामने रखना चाहिये। वह शान्ति जो केवल एकान्त में अनुभव होती है वह कच्ची है, और न जाने कब छिन जाये। घोर क्रिया में भी व्यक्ति को शान्त रहना सीखना है।

(पत्र 135, पृष्ठ 116)

❖ ❖ ❖

अपनी सभी महत्वाकाँक्षाओं को, सभी चेष्टाओं को और अपने आप को समूचा ही उसके अर्पण करना सीखना है। जितना जितना हम ऐसा करने का यत्न करेंगे, हम उस की समीपता को अनुभव कर पायेंगे। और साथ ही उसकी शक्ति तथा प्रेरणा को भी, हम उस में वास्तव में निवास करने लग जायेंगे। यह निश्चिन्तता की आनन्दमयी स्थिति है।

(पत्र 135, पृष्ठ 116)

❖ ❖ ❖

कृपा का पात्र बना लेना भी तो उसका काम है। हमारा काम तो झुक जाना है उसके आगे और भीतर से उसके होने के लिये तैय्यार होना।

वह स्वयं बदल डालेगा और हमें अपने योग्य कर लेगा।

(पत्र 137, पृष्ठ 118)

❖ ❖ ❖

समर्पण की भावना तो जाप में बैठते समय जागृत करनी चाहिए। "यह सभी कुछ तेरे चरणों में है माँ। इसे अपना ले। इस मन को, तन को, बुद्धि को-इस आपे को पूरी तरह से अपना कर ले, माँ! कृपा कर। तू ही ले चल जिस रास्ते तू ले जाना चाहती है। तू मंगलमयी माँ है!"

(पत्र 138, पृष्ठ 119)

❖ ❖ ❖

जितना उसका हो जाने की तड़प होती है उतना ही शक्ति का प्राबल्य होता है और उतना ही प्रेरणा का भी। अत्यन्त प्रबल प्रेरणा तो प्रतिकूल आचरण होने ही नहीं देती। (पत्र 138, पृष्ठ 119)

❖ ❖ ❖

प्रभु शक्ति के देने वाले हैं, शान्ति के देने वाले हैं और शरणागत की समस्याओं को सुलझा देते हैं। ऐसा दृढ़ विश्वास रखियेगा। भीतर की माँगों को उसके सामने रखियेगा और अपने को पूरी तरह से विश्वासपूर्वक उस पर छोड़ दीजियेगा। फिर उसके विधान को सहर्ष स्वीकार करने को तैय्यार रहिये सभी जगहों में। चिन्ता बेकार है। (पत्र 138, पृष्ठ 120)

❖ ❖ ❖

राम नाम सब रोगों की अचूक औषध है। परन्तु अच्छा यही है कि शारीरिक रोगों के लिये उसका उपयोग सोच-समझ कर करें। शरीरगत कर्म हमें भोगना ही है। उपचार करना हमारा कर्तव्य है, ऐसी बुद्धि रखनी चाहिये। ऐसा सोचने से फल के लिये व्याकुलता नहीं होती। राम नाम से संस्कार का क्षय होता है परन्तु उसे सामान्यता शारीरिक स्तर पर बरतना उचित नहीं। प्रभु की इच्छा को ही प्रधान मानकर चल सकता है प्रभु का भक्त। उसे तो मालिक के आगे माथा टेकना सीखना है। यदि इस प्रकार से वह नाम को बरतने लगेगा तो वह मालिक के समीप कैसे हो पायेगा? अपने अथवा दूसरे के शरीर का उपचार भगवान का पूजन समझकर किया जा सकता है और वैसा करते हुए भी तटस्थ रहा जा सकता है।

जो सेवा कार्य आपने चुना है इसे तो पूजन समझकर करियेगा।

(पत्र 139, पृष्ठ 121)

❖ ❖ ❖

माँग करियेगा भीतर से पूरी तरह उसका हो जाने की। और सभी माँगें तो अपनापन आगे कर देती हैं और हमारे और प्रभु के बीच में आकर खड़ी हो जाती हैं। जहाँ भीतर से और माँग जगे तो उसे प्रभु के आगे रख देना है। 'मालिक, यह माँग हो रही है। तू जानता है मेरे हिताहित को। चाहे तो इस माँग को पूरा कर दे। चाहे इसे शान्त कर दे। मैं तो तेरे ही दर पर पड़ा हूँ।' (पत्र 139, पृष्ठ 121)

❖ ❖ ❖

सांसारिक अवलम्बन तो सभी अस्थिर हैं। स्थिर अवलम्बन तो प्रभु का ही है। जब हम सांसारिक अवलम्बनों को प्रभु की देन के रूप में स्वीकार करते हैं तो उनके चले जाने पर विकलता नहीं होती। अन्यथा धक्का लगता है। सांसारिक वियोग उस परम अवलम्बन को प्रकट करते हैं। (पत्र 140, पृष्ठ 122)

❖ ❖ ❖

आवश्यकता यह जान लेने की है कि व्यक्ति सतत् परिवर्तनशील है। और परिवर्तन ही विकास का तरीका है। पाशव कोटि से वह उठता हुआ दिव्य कोटि को, भगवद् भाव को प्राप्त करने की सामर्थ्य रखता है। इस विकास की प्रेरणा जीवन के भीतर निहित है, जो व्यक्ति को स्वत: आगे लिये चली जाती है। मनुष्यत्व को प्राप्त कर व्यक्ति अपने बुद्धि-बल के द्वारा उसी प्रगति को तीव्र कर सकता है। बस इतना ही। विकास का काम तो वैसे हो ही रहा है, और होता चला जायेगा, चार दिन में यह पूरा होने का नहीं, और इसका बोझा भी पूर्ण रूपेण मनुष्य पर ही नहीं है।

(पत्र 141, पृष्ठ 122)

❖ ❖ ❖

पशुत्व से मनुष्यत्व तथा दिव्यत्व को लाभ करने में बुराई भी एक आवश्यक वस्तु है। काम के बिना व्यक्ति की शक्ति का उद्‌भव ही नहीं होगा, शक्ति की वह जैवी क्षेत्र में आदि अभिव्यक्ति है। वह शुद्ध होती होती विकास के क्रम में विशुद्ध प्रीति तथा दिव्य आनन्द के रूप में परिणित

हो जाती है अतः बुराई से डरने की आवश्यकता नहीं है। विकासक्रम में प्रत्येक व्यक्ति इसके ऊपर उठ जायेगा। जो साधन करेगा वह कुछ जल्दी। (पत्र 141, पृष्ठ 122-123)

❖ ❖ ❖

यदि यह समझ में आ जाए तो यह नगण्य हो जाता है कि हम में कितना कूड़ा करकट है, गणनीय तो होता है वह उपाय जिससे हम ऊपर उठ सकें और गणनीय हो सकती है हमारी लगन ऊपर उठने के लिये। आदर्श हमारे सामने रहना चाहिये। (पत्र 141, पृष्ठ 123)

❖ ❖ ❖

हम आगे चल रहे हैं यह निश्चित है। दैवी प्रेरणा ही हमें आगे ले जा रही है, और हमारा सुचारु प्रयत्न भी, और हम पहुँचेंगे गन्तव्य स्थल पर यह भी सुनिश्चित है। कब? हम घबराते नहीं हैं। जो हमारे हाथ में है हम करेंगे इसमें अधीरता कैसी? (पत्र 141, पृष्ठ 123)

❖ ❖ ❖

इसका साधन है प्रभु कृपा। उसकी समीपता और उस की स्मृति, उसकी समीपता की चाह। इस प्रकार हमें धैर्य से चलना है। प्राकृतिक चिकित्सा में ज्यों ज्यों व्यक्ति आगे बढ़ता है उसके छिपे विकार प्रकट होते हैं। (पत्र 141, पृष्ठ 123)

❖ ❖ ❖

क्या आवश्यकता है जानने की कि कितना विकार है, कैसे विकार हैं आदि। प्रभु पर विश्वास, प्रकृति पर विश्वास और जो करणीय है वह करना। (पत्र 141, पृष्ठ 123)

❖ ❖ ❖

अनासक्ति आवश्यक है। अपने से अलग होकर इस भीतर के संग्राम को देखो। अगर प्रभु पर विश्वास है तो गिरने का डर कैसा? वह सदैव हमारा हित चिन्तक है ही। (पत्र 141, पृष्ठ 123)

❖ ❖ ❖

दुनियाँ में अगर हम किसी पर अपने को पूरी तरह सौंप सकते हैं तो वह है एकमात्र भगवान ही, पतन से हमें बचाने की शक्ति अगर किसी में है तो उसी में। वह जननी विश्वमाता ही हमारे हित को अधिकाधिक

समझ सकती है, और साध सकती है। हमें वह आग की आँच से अति समीप पहुँचने पर भी बचाये रखेगी। (पत्र 141, पृष्ठ 123)

❖ ❖ ❖

"माँ! मैं तो अपना पतन और उत्थान जिसे समझता हूँ वह भी तेरे ही अर्पण करता हूँ। इन नन्हे हाथों में सामर्थ्य नहीं कि सभी परिस्थितियों में वह मेरी रक्षा कर सकें। तू कर सकती है" यह समर्पण ही शान्ति का पथ है। (पत्र 141, पृष्ठ 123)

❖ ❖ ❖

समर्पण एक पल में नहीं होगा इसके लिये इच्छा करनी है, प्रार्थना करनी है, भावना करनी है। (पत्र 141, पृष्ठ 124)

❖ ❖ ❖

"वही होगा जो भगवान को मंजूर है।" यह सिद्ध स्थिति है, इसका स्मरण करना भी उस स्थिति को समीप लाना है, जैसा हम सोचते हैं वैसा ही बनते हैं। अगर हमें आगे उठना है तो विचार शक्ति की रचनात्मकता का उपयोग करना आवश्यक है। सुझाव एक प्रधान शक्ति है साधना क्षेत्र में। (पत्र 141, पृष्ठ 124)

❖ ❖ ❖

'जिसने दुनियाँ को दिल दिया है वह भगवान को भी दिल दे सकता है"। आप भगवान को दिल ही क्यों अपने आपको भी दे सकते हैं। (पत्र 141, पृष्ठ 124)

❖ ❖ ❖

आपको आन्तरिक विकारों से छुट्टी पाना आवश्यक है। वह विचारधारा जो नाश कर सकती है निर्माण नहीं कर सकती, उसको हम कभी भी स्थान न दें। इससे हटना मुश्किल नहीं, उनकी उपेक्षा करनी, पहले इसकी अनुपयोगिता और हानिकारकता को समझना आवश्यक है। फिर इसकी उपेक्षा कीजियेगा थोड़े समय में शान्त हो जायेगी। यह उलझनें कभी न सुलझेंगी। इनके सुलझाने का एकमात्र उपाय है विशाल उच्च दृष्टि को लाभ करना जो भगवान के समीप होने से लाभ हो सकती है। सभी संशय सदा के लिए निवृत्त हो जाते हैं। (पत्र 141, पृष्ठ 124)

❖ ❖ ❖

अपने भीतर झाँकने से कारण समझ में आ सकता है कि चिन्ता किस बात से है। कारण पता चले तो उसका इलाज आसान हो जाता है। तथापि रामनाम तो अमोघ औषध है, यह काम करेगा, ज़रा उत्साह पूर्वक बर्तियेगा।

(पत्र 143, पृष्ठ 125)

❖ ❖ ❖

आँधियाँ आती हैं झकझोर जाती हैं। उनसे घबराना नहीं।

(पत्र 145, पृष्ठ 127)

❖ ❖ ❖

मन बहुत गड़बड़ करे तो आसान इलाज है माला देवी का आश्रय। जल्दी-जल्दी रट लगे तो मन में शान्ति होने लगती है। जब नाम मन में खूब व्याप्त हो जाये और हाथ रुकने लगे तो माला छोड़ दें। भगवान के सम्मुख होने का प्रयास प्रार्थना भी लाभदायक होती है, ऐसे समझें।

(पत्र 145, पृष्ठ 127)

❖ ❖ ❖

विचारों को काबू पाने नहीं देना चाहिये। सजग रहने से आम वक्त में कोई विचार प्रबल न होने देना सम्भव है। यदि यह चौकसी हर वक्त रखी जायेगी, तो ध्यान के समय में कठिनाई नहीं होगी। जब हम दुनियाँ की बातों और घटनाओं को महत्व देते हैं, जब हम उन्हें ऊँची दृष्टि से न झाँक कर क्षुद्र मानव दृष्टि से आँकते हैं तो वह बड़ी दीखती हैं। उस ऊँची दृष्टि से तो जीवन और मरण भी बहुत नहीं दीखते सामान्य घटनायें (फिर विवाह शादी आदि) का तो कहना ही क्या?

(पत्र 145, पृष्ठ 127)

❖ ❖ ❖

नाम को अपने भीतर खूब गुंजा दीजियेगा। नाम साधन पथ की अमूल्य निधि है, सभी समस्यायें इसके द्वारा हल होती चली जायेंगी। मेरी मंगल कामनायें तो आपके साथ हैं ही। (पत्र 146, पृष्ठ 128)

❖ ❖ ❖

मेरे लिये व्यक्ति और व्यक्ति में अन्तर का भान करना असम्भव है। मैं तो सेवक हूँ, जहाँ मुझे सेवा का क्षेत्र मिलता है मुझे वहाँ काम करना है। जहाँ मेरे कुछ करने से किसी को आगे चलने में सहायता हो सकती

है वही मेरे लिए काम है। मेरे हृदय में प्रभु ने प्रीति की ज्योति जगाई है वह सभी ओर प्रसारित होती है, मैं चाह कर भी उसे किसी के प्रति बन्द कर सकूँ, यह असम्भव है। यह जीवन औरों के लिये अर्थात् अपने लिये ही है। और प्रकार के आन्तरिक अथवा बाह्य जीवन की मैं कल्पना नहीं कर सकता। (पत्र 148, पृष्ठ 129-130)

❖ ❖ ❖

जब तक आप मेरी आवश्यकता समझेंगी मैं उपस्थित रहूँगा और यदि वह घड़ी आये जब आप मेरी सेवा की आवश्यकता न समझें, आप उस कृत्य-कृत्य स्थिति को लाभ कर लें तो मैं भी अपने को कृत्य-कृत्य समझूँगा। (पत्र 148, पृष्ठ 130)

❖ ❖ ❖

व्यक्तियों की विषमतायें घोर हैं। मैं आज तक उनको धोने का यत्न करता आ रहा हूँ और आगे भी करता रहूँगा। सफलता तो प्रभु के हाथ में है। मैं किस बात का दावा कर सकता हूँ। (पत्र 150, पृष्ठ 131)

❖ ❖ ❖

अपने में अधिक सौम्यता, अधिक प्रीति, अधिक क्षमा भावना लाने की चेष्टा करें। यही शान्ति का रास्ता है। दूसरे न भी बदलें तो अपने बदल जाने से काफ़ी क्लेश कट जाते हैं। (पत्र 150, पृष्ठ 131)

❖ ❖ ❖

यदि व्यक्ति चाहे कि दूसरे उससे द्वेष न करें - डाह न जागृत हो दूसरों में बल्कि दूसरे उसके प्रति प्रीतिपूर्ण रहें तो उसके लिए उसे प्रयत्न करना होगा। दूसरों के हित, दूसरों का दृष्टिकोण। दूसरों की रुचियाँ हमारे में प्रधान रूप से सामने आयें अपनेपन को हम मिटा डालना सीखें। यह जानें कि दूसरा कैसे सोचता है, उसे क्या अच्छा लगता है। वह चाहता क्या है। वह तो पूज्य प्रतिमा है प्रभु की। बस, आदर दें दूसरों को। प्रशंसा करें दूसरों के गुणों की। और प्रीति करें दूसरों से। अपने हित का चिन्तन गौण हो। अपनी चर्चा कभी न हो यथासम्भव। अपने मान को मारने का तरीका है दूसरों को आदर देना। हम इतना झुक जाएँ कि दूसरे हमें और झुका ही न सकें। वह जो लोगों का नेता होता है वह दूसरों के पीछे चलना जानता है। जिसके आगे बढ़ना हमें अखरता है। वह अभी नेतृत्व करना

सीख नहीं पाया। इसी प्रकार से हम किसी से आगे बढ़ें तो यह भान न हो कि हम पीछे छोड़े जा रहे हैं हम आगे ले जा रहे हैं – सेवा के नाते आगे बढ़ते हैं। (पत्र 155, पृष्ठ 134-135)

❖ ❖ ❖

बस अपने को मिटा देना दूसरों में – प्रभु में यही रहस्य है। हम कहीं आदेश नहीं करते – सुझाते हैं। आदेश वहाँ करते हैं जहाँ हमारे प्रति प्रीति आदेश को – आदेश रहने ही नहीं। देती – वह प्रेम सन्देश बना देती है। सभी हृदयों का हम अपने में स्पन्दन सुन पाएँ और सभी मस्तिष्कों की तरंगें पकड़ पाएँ अपने में। तब हम दूसरों में अपने को, प्रभु को पा जाएँगे। (पत्र 155, पृष्ठ 135)

❖ ❖ ❖

तृणादपि सुनीचेन नसेखि सहिष्णुना
अमानिता मानदेन कीर्तनीये सदा हरिः॥

तिनके से भी हल्का होकर, वृक्ष से भी अधिक सहनशील बनकर, अमान रहकर दूसरों को मान देकर, भगवान का सदैव भजन करना चाहिये, कीर्तन करना चाहिये। यह आदर्श चैतन्य महाप्रभु के सामने कितना उज्ज्वल है यह आदर्श। (पत्र 155, पृष्ठ 135)

❖ ❖ ❖

काम के बारे में यही भावना रखनी चाहिये कि यह काम प्रभु का ही है उसने ही हमें सौंप रक्खा है हम उसका ही काम कर रहे हैं। बस यही उसकी पूजा होगी। काम भी मन लगाकर करना होगा क्योंकि अब यह प्रभु का है। आखिर हमारे और बच्चों की शरीर रचना भी तो प्रभु का ही कृत्य है। उसे हम अपना क्योंकर जानें। (पत्र 156, पृष्ठ 136)

❖ ❖ ❖

साधन के पथ पर चलते हुए व्यक्ति को भीतर से उमड़ने वाले विचारों में बहुत विवेक करने की ज़रूरत है। यदि बिना परिणाम को सोचे सभी विचारों को, जो भीतर से आते हैं, अपनाता चला जाता है तो वह कहीं का भी नहीं रहता। किसी विचार का क्या परिणाम होगा, यह तो हम जान सकते हैं। उसी परिणाम को सामने रखकर विचारों को स्वीकार करना अथवा बहिष्कृत करना चाहिये। सत्य तो इतना रहस्यमय है कि उसके

बारे में दावा करना खेल नहीं है। (पत्र 157, पृष्ठ 136)

❖ ❖ ❖

पतन से बचने का तरीका है सदैव अच्छे और अच्छे होने का यत्न करना। पति की सेवा, भगवान को प्राप्त करने की दृढ़ अभिलाषा, सन्तों तथा सतियों के चरित्र को अपने में लाने की भावना व्यक्ति को न केवल पतन से बचा सकती है, उसे आगे भी ले जा सकती है।

(पत्र 158, पृष्ठ 136-137)

❖ ❖ ❖

अपने को काम में लगाये रखना, भजन पूजन में रुचि पैदा करना और यथा सम्भव दूसरों की सेवा करना यही अपना स्वभाव बना लीजियेगा। सत्य की कसौटी पर अपने को नित्य प्रति कसा करें।

(पत्र 158, पृष्ठ 137)

❖ ❖ ❖

जीवन एक पेचीदा पहेली है। इसमें विचारों की अन्तिमता तो मृत्यु ही है। (पत्र 159, पृष्ठ 137)

❖ ❖ ❖

मुझे तो ऐसे लगता है कि एक ही विषय पर मैं दो बार ठीक एक दृष्टिकोण से सोच नहीं सकता हूँ, ठीक उन्हीं शब्दों का उपयोग करना तो दूर रहा। जीवन की दिशा में पुरानापन रह सकता है आगे बढ़ने पर भी। परन्तु उसके डीटेल्ज़ में तो नित्य न्यूनता रहनी वृद्धि की अवस्था में स्वाभाविक ही है। (पत्र 159, पृष्ठ 138)

❖ ❖ ❖

विकासोन्मुख व्यक्ति में एक बात बहुत कमज़ोरी लाती है। दूसरों से मुहर लगवाने की, पहिचान पाने की इच्छा। (पत्र 159, पृष्ठ 138)

❖ ❖ ❖

प्रातः उठना तो बहुत अच्छा होता है। उठकर खटिया पर ही बैठने का अभ्यास करियेगा, बस 15 मिनट, अभी अधिक नहीं और इधर सोते समय बैठ लीजयेगा-10-15 मिनट। इसमें तो कोई मुश्किल न होनी चाहिये। रजाई छोड़ने की ज़रूरत नहीं। उठने की ज़रूरत नहीं। आगे देखा जायेगा क्या होता है। (पत्र 159, पृष्ठ 138)

❖ ❖ ❖

आदर पाने का तरीका है, आदर देना – अपने आदर की चाह को मिटा देना। इससे समता भी आती है। (पत्र 159, पृष्ठ 139)

❖ ❖ ❖

राम नाम की वास्तव में महिमा अपार है। वह मैंने अपने में ही नहीं अपने अनेक मित्रों में देखी है। मेरी आँखों के सामने-सामने उनका काया-कल्प हो गया है। 'राम' नाम से महाशक्ति का प्रवाह व्यक्ति में आने लगता है और वह व्यक्ति को धीरे-धीरे निर्मल ही नहीं करता, उज्ज्वल भी कर देता है। उसे माँ संभाल लेती है और सभी कुछ उसके लिये होने लगता है। (पत्र 160, पृष्ठ 139)

❖ ❖ ❖

जैसे-जैसे साधक आगे बढ़ता है वैसे-वैसे वह कमियाँ जो उसमें छिपी थीं वह प्रकट होने लगती हैं। परन्तु प्रगट होकर वह धीरे-धीरे शान्त हो जाती हैं। वह निम्न संस्कार एक ऊँची अवस्था तक किसी न किसी रूप में बने रहते हैं। उनसे घबराने की आवश्यकता नहीं।

(पत्र 160, पृष्ठ 139)

❖ ❖ ❖

हमारी परिस्थिति हमें कुछ सिखाने को आती है। अनजाने भी हमारे भीतर छिपे संस्कारों को वह जगा देती है और हमें उनको निकाल बाहिर करने को इशारा करती है। वास्तव में परिस्थिति ही स्वयं यह कार्य करने को आती है। (पत्र 161, पृष्ठ 140)

❖ ❖ ❖

अपने भजन में बैठने के समय को अलग रखियेगा। रोज प्रात: ही बैठने का नियम बनायें। रात का खाना कम कर दीजियेगा। बैठने से पहले भगवान का आवाहन करियेगा – उनको समीप जानकर नमस्कार कर दीजिये। खूब जाप करिये। भगवान की आप पर कृपा होगी। आपको शान्ति मिलने लगेगी। धैर्य इतनी जल्दी न खोना चाहिये। (पत्र 163, पृष्ठ 142)

❖ ❖ ❖

मनुष्य अभी विकास की किसी प्रारम्भिक सीढ़ी पर है, जैसे कि मानव समाज और उसकी सभी प्रकार की परिस्थितियाँ। जमाना बड़ी तेजी से बदल रहा है। यह बातें जो किसी बीते जमाने में हितकर थीं वह यदि

आज अहितकर हो गई हैं और परिवर्तन मानती हैं तो इसमें आश्चर्य ही क्या है? मनुष्य के हाथ को किसी ने बाँधा नहीं है। परिवर्तन ही बुद्धिमत्ता का परिचय देता है और विकास को सम्भव बनाता है।

(पत्र 165, पृष्ठ 143)

❖ ❖ ❖

नये युग के साथ नये धर्म तथा नई मर्यादाओं की स्थापना भी परमावश्यक है। मैं पुरानी व्यवस्था को बिलकुल निरर्थक ही समझता हूँ। वह आने वाले परिवर्तन की दाधिका हो रही है। (पत्र 165, पृष्ठ 143)

❖ ❖ ❖

जहाँ पर बाह्य क्षेत्र में परिवर्तन की आवश्यकता है वहाँ उसके साथ ही साथ आन्तरिक क्षेत्र में हमें अपने मूल्य आँकने के पैमाने में भी घोर परिवर्तन की आवश्यकता है। (पत्र 165, पृष्ठ 144)

❖ ❖ ❖

झूठ को झूठ स्वीकार करना झूठ को छोड़ने का तरीका है इसके लिए हौंसला चाहिए। परन्तु इसके बिना आदत छूट भी नहीं सकती। छिपाने से तो आदत पक्की होती है। आप अपनी ग़लती को मान लें, क्षमा माँगें, तो आपको भी शान्ति हो जायेगी। रोज़ सोने से पहले दिन भर के झूठों का हिसाब करना चाहिये। (पत्र 166, पृष्ठ 144)

❖ ❖ ❖

इस बात का इन्तजार मत करिए कि पता चले तभी स्वीकार करें। यदि आदत बुरी है और वह है ही। (पत्र 166, पृष्ठ 144)

❖ ❖ ❖

आपने अपने ध्यान के बारे में लिखा है। मैंने उससे यह समझा है कि एक सुप्त अवस्था हो जाती है जिसमें नाम के स्पन्दन का भी भान नहीं रहता। उसमें पहिले जैसे आनन्द भी नहीं रहता। यह स्थिति भी स्वाभाविक ही है। अपने को और उस पर छोड़ देना है। और उस आनन्द की अनुभूति को भी प्रभु के चरणों में अर्पित कर देना है। इस समता में भी निस्तब्धता में भी प्रभु का निवास है। यह निस्तब्धता हमारी चेतना में सतत ही पीछे बनी रहती है और सभी के पीछे। जैसे बाह्य जगत् में चाह प्रभु को सौंपनी है वैसे ही आन्तरिक साधन के क्षेत्र में भी। सहज

भाव इसी तरह से खिलने लगता है। (पत्र 167, पृष्ठ 145)

❖ ❖ ❖

काम के भोग से तृप्ति होती है। वह तृप्ति बहुत महँगी होती है। इतनी शक्ति का उसमें व्यय होता है कि व्यक्ति का ज्ञान-तन्त्र संस्थान सारे का सारा हिल जाता है और वह उपयोग प्रतिक्रिया भी लाता है। उस शक्ति का यदि उपयोग किसी अन्य रचनात्मक क्षेत्र में किया जाए तो व्यक्ति बहुत ऊँचा और बड़ा हो सकता है। (पत्र 170, पृष्ठ 148-149)

❖ ❖ ❖

इसमें भी सन्देह नहीं कि काम की शक्ति रचनात्मक शक्ति है। इसकी जागृति ही मनुष्य को मनुष्य बनाती है उसमें क्रियाशीलता और विचारशीलता लाती है। परन्तु इसका दुरुपयोग तो उनको भी नष्ट करता चला जाता है। (पत्र 170, पृष्ठ 149)

❖ ❖ ❖

इस शक्ति का हमें उपयोग करना है, उचित से उचित ऊँचे से ऊँचा। (पत्र 170, पृष्ठ 149)

❖ ❖ ❖

कामोपभोग द्वारा होने वाली तृप्ति प्राण की-इन्द्रियों की तृप्ति है। (पत्र 170, पृष्ठ 149)

❖ ❖ ❖

परन्तु प्राण की तृप्ति तो आपकी तृप्ति है नहीं। आप प्राण नहीं हैं। आप अपने को जितना प्राण से एक करते हैं उतनी ही प्राण की व्याकुलता आपकी व्याकुलता हो जाती है और उसकी तृप्ति भी आपकी तृप्ति। (पत्र 170, पृष्ठ 149)

❖ ❖ ❖

मन-प्राण जिन तत्त्वों का बना है उसका कामोपभोग द्वारा, द्वेष द्वारा विकास होता है। (पत्र 170, पृष्ठ 149)

❖ ❖ ❖

मन के, बुद्धि के तथा इन्द्रियों के हम स्वामी हैं। यदि हम स्वामित्व को पहिचानें और धैर्य पूर्वक तरीके से प्रयत्न करें तो हम इनको बदल सकते हैं। (पत्र 170, पृष्ठ 150)

❖ ❖ ❖

इसके साथ ही साथ जितना हम अपनी चेतना को ऊपर उठाने का यत्न करेंगे उतनी ही यह शोधन क्रिया गहरी और जल्दी होगी।

(पत्र 170, पृष्ठ 150)

❖ ❖ ❖

भाई बन्धुओं के प्रति सद्‌भावना बनाये रखनी चाहिए। उनका बुरा सोचना तो ठीक बात नहीं। इससे हृदय में जलन होती है। हम भी अपने को उसी कोटि में पहुँचा देते हैं। **यदि कोई बुरा करता है तो जैसी उसकी बुद्धि है वैसा ही करता है** और अपने लिये करता है। **हम तो अपने प्रारब्ध को भोगते हैं। दूसरों को क्या दोष देना?** उससे लाभ नहीं होता, हानि होती है। प्रार्थना करनी चाहिए कि भगवान उनको सद्‌बुद्धि दें और हमें भी शान्ति दें। यही शान्ति का रास्ता है।(पत्र 171, पृष्ठ 150)

❖ ❖ ❖

अधिक तड़प चाहिए और बहुत अधिक ग्रहण-शीलता। हमारे विचार, हमारे आग्रह, हमारा सन्तोष (तमस) और **सबसे बढ़कर हमारा अहम् ही हमारा शत्रु हो जाता है। यह सभी ग्रहण शीलता के शत्रु हैं।**

(पत्र 172, पृष्ठ 151)

❖ ❖ ❖

हमारी अकड़ हमें ही अमृत प्रसाद से वंचित रखेगी। यह सुनिश्चित ही है। (पत्र 172, पृष्ठ 151)

❖ ❖ ❖

थोड़ा स्वाध्याय रामायण अथवा गीता या कोई सन्त-चरित्र या सन्तवाणी पढ़ना रोज़ आवश्यक है। कम से कम एक घण्टा रोज़ प्रभु-चिन्तन प्रार्थनादि आवश्यक है। इससे दिमाग साफ रहने लगेगा और जीवन में समुचित शिक्षा मिल पायेगी। (पत्र 172, पृष्ठ 151)

❖ ❖ ❖

मेरा तो यही अनुभव है कि हम माँ को पुकारते हैं तो तत्काल उत्तर आता है। जिस भाव से और जितने प्रबल भाव से पुकार होती है, उसके अनुकूल ही उत्तर होता है। (पत्र 173, पृष्ठ 152)

❖ ❖ ❖

कर्मयोग का लक्ष्य तो उस आध्यात्मिक स्थिति का लाभ है जिसमें

व्यक्ति उसमें रहता हुआ भी कर्म कर सके और विकास के लिये भी कर्म अनिवार्य है। (पत्र 173, पृष्ठ 152-153)

❖ ❖ ❖

सेवामयी वृत्ति हो जानी चाहिए। व्यक्ति दूसरों के बारे में सोचे और उनसे इसी भाव को लेकर मिले कि मैं किसी के लिये कितना अधिक और कैसे उपयोगी हो सकता हूँ। सेवा धन से ही नहीं होती तन, मन, बुद्धि तथा अन्तरात्मा से भी होती है। (पत्र 173, पृष्ठ 153)

❖ ❖ ❖

हम सब में वही लीला कर रहे हैं। जितना जिसका अहंकार है उतनी उतनी उसकी लीला अन्धकारमयी होती है पहिचानने में नहीं आती और दु:ख का कारण होती है। जितना हम अपने को उस पर छोड़ना चाहते हैं, अपनी इच्छाओं, आकाँक्षाओं और रुचियों से परे होकर पूरी तरह उसका होना और उसके लिये ही जीना चाहते हैं, उतनी ही उसकी लीला उज्ज्वल रूप में प्रगट होने लगती है। उसकी लीला के रहस्य तो बहुत गूढ़ हैं, यह दृष्टि क्या समझ सकती है। प्रभु विशुद्ध प्रेममय है, इसमें सन्देह नहीं।

(पत्र 176, पृष्ठ 155)

❖ ❖ ❖

अपनी इच्छा को प्रभु के अर्पण कर देने में तो और भी मजा आता है। ऐसा करने से हम प्रभु के समीप हो जाते हैं - उसकी कृपा के पात्र बन जाते हैं। प्रभु का स्मरण करते हुए उन्हीं के समीप होना - अपनापन उसमें खो देना - बस, यही करने को हो। फिर जो भी हमें दीखे, सुने अथवा न सुने सभी ठीक है। यही शान्ति का पथ है।

(पत्र 176, पृष्ठ 155)

❖ ❖ ❖

प्रभु प्राप्ति का कार्य एक ही जन्म में नहीं हो जाता।

(पत्र 176, पृष्ठ 156)

❖ ❖ ❖

जाप में बैठते समय पहले गीता से किसी श्लोक पर मनन कीजियेगा अथवा किसी और अध्यात्म विषय पर विचार कीजियेगा। यदि इसमें एकाग्रता होने लगे तो ठीक तरीका है 5-7 मिनट के बाद जाप आरम्भ

कर दीजियेगा। (पत्र 177, पृष्ठ 157)

❖ ❖ ❖

दूसरा तरीका हो सकता है किसी प्रतिमा का ध्यान। जो आपको सुन्दर लगी हो–मन मोह लेती हो, – उसमें राम को समझते हुये जाप करियेगा। जोन सा रुच जाये उसका आश्रय लीजियेगा। आँखें मुँदी ही रहनी चाहिये। (पत्र 177, पृष्ठ 157)

❖ ❖ ❖

तीसरा तरीका हो सकता है जाप करते हुए श्वास प्रश्वास का ध्यान रखना। उसे बदलने की चेष्टा नहीं करनी, परन्तु जैसे वह चलता है उसी पर दृष्टि देनी–मानसिक। (पत्र 177, पृष्ठ 157-158)

❖ ❖ ❖

'समझना' और आगे बढ़ना, और आगे बढ़ने के लिये समझना ऐसा करते हैं प्रगतिशील व्यक्ति। हम बाह्य सहारों के आश्रय इतना अधिक रहते हैं कि हमारी गम्भीर धारायें प्रगट ही नहीं हो पातीं। (पत्र 178, पृष्ठ 158)

❖ ❖ ❖

महत्वाकाँक्षा को, अपनी आशाओं को पूरी तरह से माँ के चरणों में रख देना। **माँ मैं कुछ नहीं चाहता – मैं कुछ चाहना भी नहीं चाहता।** जो शक्ति है सो तेरी है, तू जो चाहती है मुझ से करवा ले और नहीं चाहती तो न करवा। **मैं मान नहीं चाहता, मैं बड़ा बनना भी नहीं चाहता। बस चाहता हूँ पूरी तरह से तेरा हो जाना।** (पत्र 178, पृष्ठ 158)

❖ ❖ ❖

हमारी वाणी रचनात्मक होनी चाहिये। उस सत्य का कथन जो व्यक्तियों को आगे बढ़ने में सहायता नहीं करता परन्तु केवल मात्र आत्मग्लानि पैदा कर देता है वह वाँछित नहीं है। सेवा का भाव बोलने में भी प्रधान होना चाहिये, और व्यवहार में भी। (पत्र 179, पृष्ठ 161)

❖ ❖ ❖

कैम्प तो वास्तव में यज्ञ होता है। उसका प्रभाव दूर-दूर तक होना स्वाभाविक ही है। (पत्र 180, पृष्ठ 161)

❖ ❖ ❖

विचारों का आना जाना बिल्कुल भी बुरा नहीं, यदि साथ में आन्तरिक क्रिया चलती रहे और साथ में जाप का भी भान हो।

(पत्र 182, पृष्ठ 163)

❖ ❖ ❖

बेईमानी का पैसा मानसिक तथा शारीरिक व्यथा का कारण होता है और आध्यात्मिक पतन का। यह बहुत ही महँगा सौदा है। कोई बुद्धिमान व्यक्ति इसकी कल्पना नहीं कर सकता। मेरी समझ में तो ऐसे काम के लिये प्रायश्चित करना चाहिए। उतने रुपये बचाना और उनको किसी सेवाकार्य में लगाना ही समुचित प्रायश्चित है। (पत्र 183, पृष्ठ 164)

❖ ❖ ❖

वैसे तो कण कण में वही है, परन्तु जहाँ हमारी भावना होती है उसमें वह हमें अधिक स्पष्ट दीखने लगता है। उसमें वस्तु की विशेषता नहीं हमारी भावना की ही विशेषता होती है। (पत्र 185, पृष्ठ 165)

❖ ❖ ❖

भगवान का नाम अमृतमय है। उसका लगातार सेवन करने से भीतर शान्ति होने लगती है और हृदय शुद्ध होता है। समझ भी अच्छी होती चली जाती है। (पत्र 188, पृष्ठ 168)

❖ ❖ ❖

विचारों को हमेशा शुद्ध रखने की चेष्टा करें। सजग रहें। ज्यों ही विचार पैदा हो, उसे पहचान जायें। माँ के सम्मुख हो जायें और उस संस्कार को भी माँ के सम्मुख रख दें। वह शान्त हो जायेगा। आप जितना प्रभु के समीप हो जायेंगे, उतना ही पतन के भय से भी बच सकेंगे। जो जगदम्बा माँ के सामने बच्चा सा रह सकता है, उसका काम क्या बिगड़ सकता है? (पत्र 191, पृष्ठ 171)

❖ ❖ ❖

सबसे बड़ा तरीका नाम ही है। इससे और सभी उपाय हेय हैं।

(पत्र 191, पृष्ठ 171)

❖ ❖ ❖

नितान्त काम से परे तो साधना के द्वारा प्रभु के पद में स्थित होने पर होना सम्भव है। श्रीराम आप पर कृपा करें। (पत्र 191, पृष्ठ 171)

❖ ❖ ❖

नाम से माँ का संस्पर्श प्राप्त होता है और उसके साथ सभी कुछ। कमी तो रह ही नहीं सकती। जिसके पास नाम है – माँ है, उसके पास सब कुछ ही है। (पत्र 193, पृष्ठ 172)

❖ ❖ ❖

अब प्रभु प्रीति को, उसके हमेशा की समीपता की लगन को यूँ जगा लो कि उससे ज़रा दूर होना बैचेनी का कारण हो जाये। बहुत देखा है दुनियाँ का तमाशा और मोह की लीला को। अब तो प्रभु चरणों में उडेल दो अपने हृदय को। वह प्रियतम, वह हमारा प्राणों का प्राण तथा जीवन का जीवन है। उसके समीप हुये बिना शान्ति कैसे सम्भव है? माँगो उससे इस लगन की माँग सच्चे दिल से। रो देखो उसके दरबार में, वह सुने बिना न रहेगा। (पत्र 199, पृष्ठ 177)

❖ ❖ ❖

आज के युग की बीमारी अर्थपरता है – अर्थ लोलुपता है – जड़वाद ही इसका मूल है। इस बीमारी से बचे रहना है। **आदमियों को हमने पैसा कमाने का यन्त्र नहीं बना लेना है। हमने पैसे को आदमियों के लिये बर्तना है यह बात कभी न भूलियेगा।** नहीं तो हम भी उसी कोल्हू के बैल की तरह हो जायेंगे जिसका बैल आज सारा संसार बन रहा है। (पत्र 200, पृष्ठ 172)

❖ ❖ ❖

हमारे सारे नियम नियन्त्रण माँ पर न्योछावर हो जाने चाहियें। एकमात्र बन्धन माता का आदेश आन्तरिक प्रेरणा हो सकता है। जब हम पर माँ की कृपा होती है तो निश्चिन्तता आ जानी स्वाभाविक है और सब अवस्थाओं में बनी रहनी भी स्वाभाविक है। (पत्र 202, पृष्ठ 181)

❖ ❖ ❖

हमें अपने आन्तरिक सूत्रों को, आसक्ति के यहाँ वहाँ उलझने वाले तारों को सुलझा डालना है। सब कुछ उसका है। हमारे बेटे, बेटियाँ, पति और दूसरे इष्ट जन भी। जो कुछ भी इस विश्व में घटता है, घोर से घोर रम्य से रम्य सब के पीछे उस परम प्रभु की अनुभूति रहती है और वह उस परम मंगल की ओर ले जाने के लिए है। हमारा सर्वस्व उन्हीं का है – उन्हीं के चरणों पर प्रेम सहित समर्पित है चैन है तो इसी में ही।

तो जो चाहें प्रभु करेंगे। हमारे तन से जैसा चाहें करें और जिन्हें हम अपना कहते हैं उनसे करें। हम इच्छा न करेंगे, माँग न करेंगे। न इस तन के लिए और न किसी और के लिए। (पत्र 202, पृष्ठ 181)

❖ ❖ ❖

जब हम जाप करते हुए अपने आने जाने वाले साँस का ख्याल करेंगे तो मन एकाग्र होने लगेगा। मन के एकाग्र होने के साथ ही साथ प्राण भी चलना धीमा हो जायेगा। कभी कभी तो बिलकुल बन्द भी हो जायेगा। तो ऐसी अवस्था से डरना नहीं या ऐसी अवस्था में कोशिश करके साँस लेने की आवश्यकता नहीं। (पत्र 203, पृष्ठ 183)

❖ ❖ ❖

यदि मूर्ति का ध्यान सहज में आ जाता हो और उसमें अच्छा लगता हो तो मूर्ति का ध्यान करियेगा। कोई भी मूर्ति हो सकती है। नहीं तो कोई जरूरत नहीं। नाम ही बड़ी मूर्ति है। (पत्र 203, पृष्ठ 183)

❖ ❖ ❖

शरीर की सीमाओं का आदर करने में ही बुद्धिमता है।

(पत्र 205, पृष्ठ 184)

❖ ❖ ❖

दुनियाँ हमारे काम के लिये व्याकुल नहीं हो रही है। हमारे बिना भी चलेगी ही। **गम्भीरता से, मज़े से काम करियेगा, जिससे काम** आदमी पर सवार न हो सके, आदमी काम का स्वामी बना रहे।

(पत्र 205, पृष्ठ 184)

❖ ❖ ❖

उस महाशक्ति की लीला अद्‌भुत है। वह सचमुच बरसा करती हैं श्रावण के बादलों की भाँति अपनी कृपा वारि को और व्यक्ति छक जाता है उसे पाकर। जितना भी हम कृतज्ञता से, प्रीति से उसके आगे झुक जाएँ उतना थोड़ा ही मालूम पड़ता है। बस इतना झुक जाने की इच्छा होती है कि अपनापन ही न रहे। (पत्र 206, पृष्ठ 185)

❖ ❖ ❖

अहं के आधार पर ही ममता, आसक्ति, द्वेष, मोह, क्रोध तथा काम खड़े हैं। अहं के परे होते ही व्यक्ति इनसे परे श्रीराम के अतुल अद्वितीय

साम्राज्य को पा जाता है। (पत्र 206, पृष्ठ 185)

❖ ❖ ❖

माँ के प्रति जो समर्पण है उसकी कोई शर्तें नहीं हैं। हम आशा क्यों करें, आशा कैसे करें? क्या माँ हमारे हित को नहीं जानती। और क्या हम माँ को अपनी इच्छाओं की पूर्तियों के लिए साधन बनाना चाहते हैं? नहीं, हमें तो उसका होना है और दृढ़ भूमि में स्थिर हो अपना सर्वस्व-अपनापन भी उसे सौंप देना है – अपना वर्तमान और अपना भविष्य भी। 'जिस विध राखे साइयाँ सोई विध रहना।' इसी में है परम शान्ति। इसी में निश्चिन्तता है। उस ज्ञान के लिए भी तड़प शान्त कर डालनी होगी। वह पूरा करेगी अवश्य; सभी कभी किसी समय पर उठी हुई कामनाओं को भी, वह बीच में हमें कभी न छोड़ेगी। वह माँ है – माँ।
(पत्र 206, पृष्ठ 185)

❖ ❖ ❖

केवल मात्र भावुकता के आधार पर तो, प्यारे, जीना मुश्किल हो जाता है। परिस्थितियों का इलाज तो भावुकता से ऊपर उठ कर ही होता है। वास्तव में यदि विचारशीलता की प्रधानता हो तो परिस्थितियाँ इतनी गम्भीर हो भी न पायें। हमारे डर वास्तव में उन बातों को जल्दी बुला लाते हैं जो हम चाहते हैं न घटें। (पत्र 207, पृष्ठ 187)

❖ ❖ ❖

जो घटना है सो घटती चली जाती है। मनुष्य की व्याकुलता का वह तनिक लिहाज नहीं करती, ज़रूरत होती है सहन करने के लिये तैय्यार रहने की। फिर व्यक्ति में शान्ति आती है जिसके बल पर व्यक्ति रास्ता निकालने की चेष्टा करता है। (पत्र 207, पृष्ठ 187)

❖ ❖ ❖

उसकी अनुमति के बिना कुछ नहीं होता। हमारे हीन संस्कारों का भी तो माँ क्षय कर डालना चाहती है; और हम चाहते हैं सुख ही सुख-शान्ति ही शान्ति! वज्र सा हृदय चाहिये सहन करने में और कोमलतम चाहिये दूसरों के दु:ख का उपचार करने में। (पत्र 207, पृष्ठ 187)

❖ ❖ ❖

हम दूसरों के लिये जो हमें ठीक समझ में आता है करने को तैय्यार

रहें। कोई हमें ठुकरा दे तो हमें क्षोभ न हो। ठुकराये जाने पर भी हम पूर्ववत् सेवा के लिये तैय्यार रहें। (पत्र 207, पृष्ठ 188)

❖ ❖ ❖

समय ग्रन्थियों को स्वयं सुलझाया करता है। जो बात इस समय चेष्टा करने पर सम्भव नहीं, वह स्वतः सम्भव हो जायेगी। धीरता बड़ी चीज़ है। ग़म खाना और कम खाना खुश रहने के तरीके हैं।

(पत्र 208, पृष्ठ 189)

❖ ❖ ❖

प्रभु का भक्त होने वाला तो वीर बनकर संसार के थपेड़ों को सहता है। वह कराहता नहीं, माँ से बल के लिये पुकारता है।

(पत्र 208, पृष्ठ 189-190)

❖ ❖ ❖

बाह्य जगत की महत्वाकाँक्षा यदि माँ के अर्पित नहीं की जाती है तो वह प्रत्याघात का कारण होती है। जितनी बड़ी महत्वाकाँक्षा उतना बड़ा प्रत्याघात, यह प्रकृति का दयापूर्ण नियम है। मानव विकास की यह माँग ही है। (पत्र 209, पृष्ठ 190)

❖ ❖ ❖

दुनियाँ में किस वस्तु या घटना का भय है जो वास्तव में उचित है। जो कुछ दीखता है सभी तो नष्ट हो जाने वाला है। कोई स्थिति भी तो बनी रहने वाली नहीं है। मृत्यु तो शरीर छोड़ना मात्र ही है। इसमें भय का काम क्या? व्यक्ति को नया शरीर मिलता है। दु:ख जो भोगना है सो भोगना ही पड़ता है। समझदार व्यक्ति खुशी खुशी वीरों की तरह सहन करता है, मूर्ख डर डर कर, रो रो कर सहता है। (पत्र 211, पृष्ठ 191)

❖ ❖ ❖

जीवन में नित्य नई समस्यायें खड़ी होती हैं, यह स्वाभाविक है जितनी आसक्ति, अहम्भाव, मान आदि हमारे भीतर रहते हैं, उतनी व्याकुलता होती है। वास्तव में साधक जो भगवान के रास्ते को पकड़ना चाहता है, वह तो इनसे शीशे का काम लेता है परन्तु असाधक घबराता है और परिस्थिति में दोष ढूँढता है। यही उसकी परेशानी का कारण होता है। इतने से ज़मीन आसमान का अन्तर हो जाता है। दु:ख तथा सुख का निर्णय

भी इस तरह आसानी से हो जाता है। (पत्र 212, पृष्ठ 192)

❖ ❖ ❖

अन्तर्मुखी वृत्ति ही वास्तव में हमारे कल्याण के लिये बड़ी आवश्यक है। **अपने ही दोष देखने, यही तरीका है सुखी रहने और आगे बढ़ने का।** (पत्र 212, पृष्ठ 192)

❖ ❖ ❖

अपनेपन को बिल्कुल मिटा देना पूर्ण शान्ति का रास्ता है। जब तक सफाई पेश करने की इच्छा होती है, तब तक अहं बाकी है और क्लेश का वही कारण है दयालु माँ ऐसी परिस्थितियाँ पैदा करके ही साधक को उसकी स्थिति का बोध कराती है और शोधन का प्रयत्न करती है। (पत्र 213, पृष्ठ 192)

❖ ❖ ❖

जब तक परिस्थिति में, दूसरों में दोष ढूँढने की और उनकी ग़लती से स्वयं सन्तोष पाने की वृत्ति है तब तक व्यक्ति अन्तर्मुख नहीं हुआ, अभी वह पूरी तरह से साधक भी नहीं बना। साधक को तो अपने भीतर देखना है और जो भी उसकी दृष्टि अन्तर्मुखी करने में सहायक होता है, उसका धन्यवाद करना है। यहाँ अगर-मगर कुछ नहीं। दुनियाँ बहती है तो बह जाये और भाड़ में जाती है तो जाये। यह साधना का अटूट नियम है। (पत्र 213, पृष्ठ 192-193)

❖ ❖ ❖

वह विषय जिसको एक बार भोगा है उसके फिर पीछे चलना माँ के विमुख होना है। शक्ति का ह्रास, आन्तरिक बल का नाश और नैतिक पतन ही है। यह उन्नति का रास्ता नहीं है। (पत्र 214, पृष्ठ 193)

❖ ❖ ❖

हर औरत उस महाशक्ति माँ का ही एक रूप है। उसे वैसा समझ कर नमस्कार करना चाहिये। माँ करके सम्बोधन करियेगा। माँ को पुकारियेगा। वह आपको बल देगी और काम की वासना से हमेशा के लिये परे कर देगी। (पत्र 214, पृष्ठ 193)

❖ ❖ ❖

इसमें सन्देह नहीं कि अपने को देह समझने से अनेक प्रकार के भय

पैदा होते हैं। परन्तु नाम के प्रताप से धीरे धीरे व्यक्ति अपने को देह से परे अनुभव करने लगता है। देहाभिमान छूटता जाता है और भय भी। अपनी अमरता का बोध हो जाता है। (पत्र 218, पृष्ठ 196)

❖ ❖ ❖

जाप के समय में ऐसा समझना चाहिये कि प्रभु की शक्ति हममें प्रविष्ट हो रही है ऊपर से और हमें निर्मल कर रही है। अपने तन और मन को पूरी तरह से शिथिल कर देना चाहिए। (पत्र 218, पृष्ठ 196)

❖ ❖ ❖

दूसरों के गुणों को देखना बहुत भली बात है। उनकी श्रद्धापूर्ण श्लाघा हमें वैसा बनने में सहायक होती है, इसमें सन्देह नहीं है।

(पत्र 219, पृष्ठ 196)

❖ ❖ ❖

आदर्श ऊँचा होता है, परन्तु उसे ठोस व्यवहार के साथ सम्बन्धित करके सोचना सीखना चाहिये। और जो बातें करने योग्य हों उनमें से एक को पकड़ कर जीवन में लाने की चेष्टा करियेगा। वह हो जाये तो दूसरी की ओर चलिये। आखिर एक दम से आसमान के तारे न टूटेंगे। किला तो धीरे-धीरे ही फ़तह हो पायेगा। कल्पना करने में शक्ति को लगाने के बजाये अब उसे व्यवहार में लगाइयेगा - थोड़ा-थोड़ा करके।

(पत्र 219, पृष्ठ 196-197)

❖ ❖ ❖

विचारों को स्पष्ट साफ और ठोस बनाते चले जाइयेगा। और उन्हें कर्म में आने का अवसर दें। साफ ठीक और ज़ोरदार विचारों से ही आप अपने को बदल सकेंगे। निराशा-हतोत्साहता से कुछ न होगा। विश्वास के आधार पर आगे सरकें और आगे सरकने में विश्वास करें।(पत्र 219, पृष्ठ 197)

❖ ❖ ❖

जो हमारे बस का है वह तो हमें करना ही चाहिये। इतना करने पर भी यदि ठीक न रह सके तो प्रारब्ध का भोग समझकर सन्तोष करना ही चाहिये। (पत्र 223, पृष्ठ 200)

❖ ❖ ❖

जीवन में परिवर्तन ही अग्रगति का साधन है। यदि हम समय समय

पर माँग के अनुसार बदलने की चेष्टा करते चले जायें तो जीवन समूचा बदल सकता है। (पत्र 225, पृष्ठ 202)

❖ ❖ ❖

ज़रूरत है कि आन्तरिक प्रेरणा की स्थिरता हो। भीतर से गहरी पुकार हो। प्रभु से सम्बन्ध प्रतीत होने लगे बिना किसी प्रकार की मध्यस्थता के प्रभु आपके समीप हैं। आपके अन्तर्तम हैं। उस समीपता तथा अन्तरतम्य को अनुभव करिएगा। उसकी कृपा की बाढ़ आप पर भी लगातार चली आ रही है। उसे ग्रहण करें। (पत्र 227, पृष्ठ 204)

❖ ❖ ❖

भावों की बनावट को भी प्रभु नहीं चाहते। विचारों की बनावट का तो कहना ही क्या? बुद्धिमत्ता तथा पुरुषार्थशीलता के अभिमान को भी वह नहीं चाहते। हम कुछ करें उसकी कृपा को पाने के लिये, अथवा हमारे कुछ करने से कृपा होगी अथवा होती है ऐसी समझ बाधक है। (पत्र 227, पृष्ठ 204)

❖ ❖ ❖

किसी प्रकार का अभिमान व्यक्ति को परमेश्वरी जगन्माता के कृपा प्रवाह से विलगा देता है। (पत्र 227, पृष्ठ 205)

❖ ❖ ❖

जैसे जैसे अहं क्षीण होता है वैसे वैसे ही वास्तविक प्रेम का स्वरूप प्रकट होता है। (पत्र 228, पृष्ठ 206)

❖ ❖ ❖

जिस जगजननी माँ ने अपनाया है वह अब हमको छोड़ कैसे सकती है। क्या हमने उसे पकड़ा है या उसने हमको? यदि हमने ही उसे पकड़ा हो तो हम छूट सकते हैं परन्तु हमें तो उस माँ ने पकड़ रखा है। जो कुछ हम पर बीतेगा, भीतर और बाहिर, वह सभी उसकी अनुमति से होगा, और होगा हमारे परम मंगल के लिए। (पत्र 229, पृष्ठ 206)

❖ ❖ ❖

साधना में यह परम सौभाग्य की बात होती है जब व्यक्ति को यह विश्वास हो जाता है कि माँ हमेशा उसके साथ रहती है। जैसे जैसे साधक उसके हाथ को सबके पीछे प्रेरक-रूप में देखने लगता है उसकी परेशानियाँ

बीत जाती हैं, इच्छायें शान्त हो जाती हैं और सच्ची भक्ति-भावना जगने लगती है। यही आत्म समर्पण का आश्रय होती है।(पत्र 229, पृष्ठ 206)

❖ ❖ ❖

भीतर से जैसे जैसे अहम्भावना क्षीण होती जाती है, क्रोध भी दूर हो जाता है। हमें कुछ बुरा लग ही नहीं सकता – हमारा निरादर हो ही नहीं सकता वह सचमुच आनन्द भरी अवस्था है। (पत्र 229, पृष्ठ 207)

❖ ❖ ❖

अधिक उदारता ही बड़प्पन की निशानी है। क्षमाशीलता से ही तो व्यक्ति मापे जाते हैं। प्रीति का आधार माँग (demand) नहीं होती, प्रदान (self giving) होती है। लेन-देन तो दुकानदारी ही है।

(पत्र 237, पृष्ठ 212)

❖ ❖ ❖

पहली आवश्यकता आत्म-विश्वास है। हमारे में बहुत बल है। हम उस दैवी शक्ति के अंश हैं। हम अपने को तामसी वृत्तियों से आवृत हो जाने देते हैं और परवशता प्रतीत करते हैं। (पत्र 239, पृष्ठ 213)

❖ ❖ ❖

व्यक्ति अपने को अपने मन बुद्धि आदि प्रवृत्तियों का दास समझने लगता है। ठीक सोचने से, अपनी सत्ता के बारे में सत्य का चिन्तन करने से आत्म-विश्वास जग जाता है। (पत्र 239, पृष्ठ 214)

❖ ❖ ❖

आपको यह समझ लेना है कि जब तक आप स्वयं अपनी बागडोर थामने के लिये तैय्यार नहीं हो जाते हैं, संसार की कोई शक्ति भी आप में स्थाई परिवर्तन न कर सकेगी। (पत्र 239, पृष्ठ 214)

❖ ❖ ❖

लोग ताना मारते हैं, उन तानों से दिल जलने लग जाता है, यह सत्य है। पर क्या हम यह निश्चित रूप से जानते हैं कि लोग हमारा दिल जलाना चाहते हैं? क्या हमारा दुखी होना उन्हें अच्छा लगता है? बहुत बार उल्टा बोलने का स्वभाव हो जाता है, जिसमें वह तनिक भी विचार नहीं रहता कि हमारे कहे का दूसरों पर क्या प्रभाव होगा और बहुत बार तो हमें स्वयं पता भी नहीं रहता कि हमने क्या कहा है, हम यह सोच भी नहीं

पाते कि हमने कोई चुभने वाली बात कही। (पत्र 242, पृष्ठ 216)

❖ ❖ ❖

ऐसा होना आश्चर्यकर नहीं, मनुष्य ही तो है। कितना उसका ज्ञान और अनुभव। **कितनी है उसमें अभी तक प्रेम की शक्ति जो दूसरों के दिल से अपने को एक कर सके।** हमसे भी यह ग़लती हो जाती है हमें पता नहीं रहता। दूसरों से भी हो जाती है उनको पता नहीं रहता।

(पत्र 242, पृष्ठ 216)

❖ ❖ ❖

यदि हमसे कोई द्वेष करता ही है तो भी सोचने की बात है। सम्भव है उसकी प्रकृति में द्वेष की प्रधानता है। हम ही से द्वेष नहीं करता औरों से भी करता है। और यदि हम ही से करता है तो उसके भी कारण हो सकते हैं। हमारे अनजाने ही हमारे द्वारा उसको चोट लगी हो, या उसके हित की हानि हुई होगी जिससे वह हमसे बिगड़ गया है।

(पत्र 242, पृष्ठ 216)

❖ ❖ ❖

ऐसी अनेक बातें सम्भव हैं। मैं तो कहता हूँ कि यदि दूसरे का कहा हमें बुरा लगता है तो विचार करने की आवश्यकता है, रोने की नहीं।

(पत्र 242, पृष्ठ 216)

❖ ❖ ❖

पहली बात आपको स्वयं सजग रहना होगा अपनी वाणी और किये के बारे में कि उससे कहीं किसी का दिल तो नहीं दुख जाता। यदि कहीं किसी को चोट लगे तो उसे मिटाने के लिए भरसक यत्न करना चाहिए। उस दु:ख से स्वयं दु:खी होना सीखें और जैसे अपना दु:ख दूर करने का यत्न किया जाता है ऐसा ही करें। यदि आपकी प्रतीति में सच्चाई है तो समय पाकर दूसरों का दिल अवश्य बदल जायेगा।

(पत्र 242, पृष्ठ 216)

❖ ❖ ❖

विचारों में रचनात्मक और ध्वंसात्मक (तोड़ने की) शक्ति रहती है, इसलिए बहुत सजग रहना ज़रूरी है। (पत्र 242, पृष्ठ 217)

❖ ❖ ❖

हमारा सुख और दुख तो वास्तव में इस बात पर निर्भर करना चाहिए कि हम क्या करते हैं दूसरों के लिए न कि दूसरे क्या करते हैं हमारे प्रति। हम उससे दुःखी या सुखी इसलिए हो जाते हैं क्योंकि आशा की डोरी से हम अपने को बाँध लेते हैं। (पत्र 242, पृष्ठ 217)

❖ ❖ ❖

सारा संसार भी ग़लत बात को ठीक कहे तो वह ठीक थोड़े ही हो जाती है। हम सत्य बोलते हों तो दुनियाँ के कहने से हम झूठे नहीं हो जाते हैं। अपने सामने और प्रभु के सामने सच्चा होना चाहिए, बस इतना काफ़ी है। (पत्र 242, पृष्ठ 217)

❖ ❖ ❖

जीवन में सभी तरह की घटनायें होनी अनिवार्य हैं। आखिर इनके बिना जीवन जीवन ही नहीं होता। स्थिति को समझना चाहिए अपने कर्तव्य को सोचकर करना चाहिए, परेशान होना तो बेकार है।

(पत्र 242, पृष्ठ 217)

❖ ❖ ❖

वास्तव में करने वाली तो वही अनन्त कृपामयी शक्ति ही तो है अहं के अज्ञान के कारण ही तो व्यक्ति को धोखा हो जाता है वह उसे पहिचान नहीं पाता अपने को कर्ता जानने लगता है। भला होने से प्रसन्न और बुरा होने से दुखी होता है। (पत्र 243, पृष्ठ 218)

❖ ❖ ❖

प्रभु की अपार अनन्त कृपा से - उस माँ के परम उदार आलिंगन से ही यह सम्भव हो सकता है कि व्यक्ति की चेतना अहं से परे निवास करे और काम करता हुआ भी वह भूल में न पड़े।(पत्र 243, पृष्ठ 218)

❖ ❖ ❖

किसी के भी जीवन में सभी बातें भरी पूरी नहीं हो सकती हैं। हम मृत्युलोक में हैं और इसमें पग पग पर सीमायें हैं।(पत्र 244, पृष्ठ 220)

❖ ❖ ❖

हमारी सीमायें हैं, जिनसे हमारा सम्बन्ध है उसकी सीमायें हैं और हमारी परिस्थिति की भी सीमायें होती हैं। इसलिए बुद्धिमत्ता इसी में है कि व्यक्ति पहले से तैय्यार हो जाये, अपनी इच्छा के विरुद्ध घटनाओं

के लिये; जो इस तरह से तैय्यार हो जाता है उसे जीवन में इतना कष्ट नहीं होता। जो हमेशा आशा रखता है या माँग करता है कि मेरे मन की-सी हो उसे चोट लगती है और वह चोट उस प्रवृत्ति के कारण असह्य हो उठती है, जीवन में कहीं आपको प्यार मिलेगा और कहीं आपको उदासीनता मिलेगी और कहीं पर प्रत्यक्ष में द्वेष भी। (पत्र 244, पृष्ठ 220)

❖ ❖ ❖

हम जैसा व्यवहार लोगों से चाहते हैं वैसा स्वयं किया करें। यदि कड़ुवा बोलने वाले यह चाहें कि दुनियाँ उनसे मीठा बोले तो यह असम्भव है। काँटे बोकर फूल थोड़े ही मिल सकते हैं। यदि हम चाहें कि दूसरे हमसे प्यार करें और मीठा बोलें तो हमें भी प्यार करना और मीठा बोलना चाहिए। परन्तु इसमें भी आशा नहीं रखनी चाहिए, माँग नहीं करनी चाहिए। यदि ऐसा किया जाये तो प्यार दुकानदारी हो जाता है, वह प्यार नहीं रहता। नि:स्वार्थ प्रीति और सेवा करने से सब कोई हमें अपनाने लगता है। यदि हम दूसरों को बुरा मानें तो दूसरे हमें बुरा मानने लगेंगे। मैं तो ऐसे लोगों को जानता हूँ जो जहाँ जाते हैं वहाँ सभी के सभी लोग उन्हें प्यार करते हैं। वह जिधर जाते हैं तो उनको माँ की सी प्रीति मिलती है। उसका कारण दिल की सफाई और नि:स्वार्थ प्रीति ही होती है, यह भगवान का रास्ता है। (पत्र 244, पृष्ठ 221)

❖ ❖ ❖

इस रास्ते पर चलकर व्यक्ति शान्त तथा सुखी रहता है परन्तु यह होता तभी है जब दिल और दिमाग को काबू में रखा जाये। दूसरे के द्वेष के बदले में यदि हम भी द्वेष करने लगें और गाली के बदले में गाली दें तो हम शैतानी रास्ते पर जा पड़ते हैं। भीतर जलन होती है और दाह बनी ही रहती है। (पत्र 244, पृष्ठ 221)

❖ ❖ ❖

हम स्वयं देवता नहीं हैं कि हमारी ग़लतियों और कमज़ोरियों को दूसरे उदारतापूर्वक सह लें तो हमें भी तो वैसा करना चाहिए।

(पत्र 244, पृष्ठ 221)

❖ ❖ ❖

बुरा मानने से अथवा तर्क युक्ति करने से, रोने अथवा चिल्लाने से

लोगों के विचार नहीं बदले जा सकते। ठीक व्यवहार और प्रीति ही दूसरों के विचार बदल सकती है। (पत्र 244, पृष्ठ 221)

❖ ❖ ❖

आप तो संसार की माँ को कहती हैं, वह तो सबकी माँ है वह भी हमेशा हमारे मन की सी नहीं करती। वह तो सभी प्रकार के अनुभव कराती हैं। जिससे हम हमेशा कच्चे-बच्चे न बने रहें। यदि इस लोक में माँ बाप ऐसा करें तो क्या विस्मय?

(पत्र 244, पृष्ठ 221-222)

❖ ❖ ❖

जीवन में एक ही अनन्य आश्रय हो सकता है और वह भगवान है। वह हमारे जन्म-जन्म का साथी है। बाकी सभी सहारे अस्थायी हैं और उनकी सीमायें हैं। इस विषय में धोखा नहीं खाना। सभी सहारे तभी तक सहारे हैं जब तक भगवान् का सहारा उनके पीछे है।

(पत्र 244, पृष्ठ 222)

❖ ❖ ❖

माँ यदि नहीं चाहती तो हमारे चाहने से भी कुछ न हो पायेगा, माँ चाहती है तो हमें ले चलेगी। विश्वास तो इस प्रकार का दृढ़ होना चाहिये।

(पत्र 245, पृष्ठ 222)

❖ ❖ ❖

जीवन में बहुत कुछ अनुभव करने को हैं व्यक्ति को सभी प्रकार की अनुभूतियों के लिए तैयार रहना चाहिये अपनी और अपने समीप वालों पर हमारा अधिकार बहुत कम है हम अपने भाग्य का ही स्वयं विधान नहीं कर सकते, दूसरों का-लड़के और लड़कियों का क्या ही कर सकते हैं? अपनी ओर से पूरी सहानुभूति हो, जो बन पड़े सेवा भी हो और मंगलकामना हो। उनके दुःख को ठीक समझ के द्वारा कम करने की चेष्टा करें परन्तु अपने दिल को बहुत बाँधना नहीं चाहिये।

(पत्र 246, पृष्ठ 223)

❖ ❖ ❖

जब कभी परेशानी होती है उसका कारण ढूँढना चाहिये, बाहर नहीं अपने भीतर। कौन सी प्रवृति अथवा संस्कार हममें न होता तो वह परेशानी

न होती। यह विवेक तो आवश्यक है। मैं जानता हूँ कारण बाहर भी होंगे उस परेशानी के। परन्तु हमारा काम भीतर के कारणों को निकाल डालना है। उन्हें प्रभु को अर्पण कर देना है – उसके सम्मुख रख कर कहना है 'माँ' तूने इतना कूड़ा करकट साफ किया है, इसे भी तू ही करेगी। यह क्रिया धीरे-धीरे व्यक्ति को बेफिक्र कर देती है।

(पत्र 247, पृष्ठ 224)

❖ ❖ ❖

अपने विकारों को देखने में झेंपना नहीं। उनकी जगह पर परिस्थिति के विकारों को नहीं देखना। (पत्र 247, पृष्ठ 224)

❖ ❖ ❖

यदि माँ आपसे किसी को लेना चाहे अथवा छीनना चाहे तो क्या आप उसे रोक सकते हैं? कोई नहीं रोक सकता। आगे ही वह उसके हाथ में है। हम व्यर्थ में मुट्ठी बन्द करके अपने को परेशान कर रहे हैं।

(पत्र 247, पृष्ठ 224)

❖ ❖ ❖

डर लगता है तो माँ को पुकारियेगा। वह हौसला देगी-दिल देगी। आप सहर्ष समर्पण कर पायेंगे, अपने और अपनों के वर्तमान और भविष्य को। यही तो चिन्ताओं से परे होने का रास्ता है। इसी रास्ते पर चलकर प्रभु का योग होता है। (पत्र 247, पृष्ठ 224)

❖ ❖ ❖

यह शरीर मन्दिर है प्रभु का, इसमें क्या सन्देह, परन्तु यह चलता फिरता मन्दिर है। जब तक यह एक सधे घोड़े की तरह सवारी नहीं देता, प्रभु की प्रतिमा इसमें स्थापित नहीं हो पाती। इसको ठीक बरतना सीखना चाहिये, यदि हम चाहते हैं कि वह प्रकाश से दिव्य कर सके।

(पत्र 247, पृष्ठ 225)

❖ ❖ ❖

साधना के रास्ते पर चलते हुए हमें अपने संस्कारों को क्षीण करना होता है। पाप संस्कार क्षीण होने में दुखदायी होते हैं। अत: कष्ट प्रतीत होता है। परन्तु प्रभु सहन करने का बल और धैर्य भी तो कर देते हैं। भोगे बिना तो कर्मों का क्षय होता ही नहीं। (पत्र 248, पृष्ठ 225)

❖ ❖ ❖

जब कभी किसी कारण से लोग हम पर विश्वास न करें तो उससे घबराने से, उस अविश्वास से दुःखी होने से तो हम इस वातावरण को बदल नहीं सकते। यह मनुष्य का स्वभाव ही है कि जब कोई संस्कार उस पर पड़ जाए तो वह झट दूर नहीं होता। (पत्र 250, पृष्ठ 226)

❖ ❖ ❖

दूसरों के विचार तो स्वतः ही बदल जायेंगे, समय आने पर। आपको तो दूसरों को उदार दृष्टि से देखना चाहिये और वैसे ही व्यवहार भी करना चाहिये। दूसरे जैसा बरतेंगे उसके लिये वह ज़िम्मेदार हैं, और हम जैसा बरतते हैं, उसके लिये हम ज़िम्मेदार हैं। इसीलिये हमें तो ग़लती न करनी चाहिये। (पत्र 250, पृष्ठ 227-228)

❖ ❖ ❖

विकास के पथ पर अग्रसर होते हुए हमें सेवा करनी होती है और आसक्तियों का परित्याग करना होता है। सेवा के क्षेत्र के धक्के ही इस आसक्ति को निकालने लगते हैं। कुछ हमारी समझ भी निकाल सकती है। **आसक्ति रहित प्रीति करने वाला व्यक्ति ही ऊँची कोटि का सेवक होता है और वास्तव में औरों का होता है।**

(पत्र 252, पृष्ठ 228-229)

❖ ❖ ❖

आप मेरे हों न हों परन्तु मैं आपका हूँ और इसके बदले में मैं कुछ नहीं चाहता। मैं यह भी नहीं चाहता कि आप मेरे हो जाएँ। मैं सभी का हो जाऊँ, पूर्णरूपेण सभी का हो जाऊँ। सीमा का अतिक्रमण करता हुआ मैं सभी का हो जाऊँ - काम में लगूँ - इसी में आत्म तृप्ति है - कल्याण है। (पत्र 252, पृष्ठ 229)

❖ ❖ ❖

हमारे में जैसे जैसे भागवती शक्ति का प्रवेश होता है और हमारा द्वार खुलता चला जाता है, जीवन रसमय, माधुर्यमय तथा शक्तिमय होता चला जाता है। हमें उसे अपने मन्दिर में लाना है। उसका उजाला सारे अन्धकार को दूर कर देगा। (पत्र 252, पृष्ठ 229)

❖ ❖ ❖

हमें परिवर्तन के लिये स्वयं तैय्यार रहना चाहिये और इसकी सम्भावना

दूसरों में पहचाननी आवश्यक है। उनके जीवन में भी परिवर्तन की गुंजाइश है और आप जैसों का क्षमा पूर्ण उदार प्रेम सम्पर्क यदि जीवन बदल डाले तो क्या विस्मय? (पत्र 252, पृष्ठ 230)

❖ ❖ ❖

प्रत्येक व्यक्ति विकास की एक विशेष अवस्था में रहता है और उसके अनुसार कर्म करता है और इसके अतिरिक्त कितना कुछ है जिसको दैवी शक्तियाँ संचालित करती हैं। हमारे बस की यह बात ही नहीं। अत: कहीं भी जो कुछ सीखने को हो सीखें और आगे बढ़ें, यही सौम्यता का पथ है। (पत्र 252, पृष्ठ 230)

❖ ❖ ❖

जितना ही संघर्ष हो उतना ही माँ के समीप हो जाइये, झुकियेगा और अपने को उसके अर्पण कर दीजियेगा। (पत्र 252, पृष्ठ 230)

❖ ❖ ❖

राज़ी हैं हम उसी में जिस में तेरी रज़ा है।
या यूँ भी वाह वाह है और वूँ भी वाह वाह है॥

शैतान का तमाशा देखें और यदि घबराने लगें तो चट से माँ की गोदी में छिप जायें। नाम माँ से संयुक्त कर देता है और उस मातृ चरण स्पर्श से – मातृ आलिंगन से – नाम में उसकी कृपा का वेगवान प्रवाह होगा और तार चलेगी – तम्बूरा बजेगा। (पत्र 252, पृष्ठ 231)

❖ ❖ ❖

माँ का सीधा मिलन, सीधा सम्पर्क ज़रूरी है। नाम संयोजक है और जोड़ भी रखता है। (पत्र 252, पृष्ठ 231)

❖ ❖ ❖

यह समझ लेना चाहिये 'मैंने ग़लती की है और मैं ग़लतियाँ करूँगा भी। ग़लतियों से मैंने बहुत कुछ सीखा है और आगे सीखूँगा भी। ग़लतियों से परे तो केवल मात्र सिद्ध व्यक्ति है और मैं वह हूँ नहीं। दूसरों को भी ग़लतियाँ करने का अधिकार है।' विकास के पथ में यह आवश्यक है। यह कमज़ोरियाँ हैं जो धीरे-धीरे दूर होती हैं। इनकी लिस्ट बनानी, इन पर निर्णय देने व्यर्थ हैं क्योंकि हम बदलते हैं और बदलते जायेंगे। इसलिये आदर्श की ओर, पूर्णत्व की ओर नज़र रखनी

आवश्यक है और जब हम अपनी अथवा दूसरों की कमज़ोरी को देखें तो ऐसे ही देखें जैसे शैशव को यौवन के पूर्व रूप में देखते हैं। बच्चा बड़ा होता होता सबल हो जाता है। ऐसे उदारता आती है – और सौम्यता भी, क्षमा भी। हम अपने पूर्णत्व का निर्माण भी करते हैं।

(पत्र 252, पृष्ठ 232)

❖ ❖ ❖

साफ कहना मुझे अच्छा लगता है, परन्तु वह साफ जो दूसरे को दु:खी करे, मैं बेसाफ-असत्य समझता हूँ क्योंकि वह ऊँचे सत्य की अनुभूति का रास्ता बन्द कर देता है। ऊँचे सत्य की अनुभूति है दूसरे को ठीक जानना और वह ऐसी विषमता में सम्भव नहीं। (पत्र 252, पृष्ठ 232)

❖ ❖ ❖

लठमार को मैं सत्य नहीं कहता। **प्रीति को मैं कोरे सत्य से बहुत ऊँचा रखता हूँ।** (पत्र 252, पृष्ठ 232)

❖ ❖ ❖

सत्य एक साधना है और ज्यों ज्यों व्यक्ति आगे बढ़ता है त्यों त्यों अनुभव करता है कि पूर्ण सत्य की अभिव्यक्ति असम्भव है। हम तो दूसरों की बातों को सुनकर भी अर्थ नहीं लगा सकते, जो वह कहना चाहता है। मनोभेद, संस्कार भेद इत्यादि इसका कारण हैं। **वाणी का सत्य मैं एक बहुत ही स्थूल सत्य समझता हूँ।** और इसके नाते-कठोरता पैदा करना तो बिल्कुल-लड़कपन। (पत्र 252, पृष्ठ 232)

❖ ❖ ❖

वाणी मधुर होनी चाहिये। यदि हृदय अभी उस प्रीति की तरंग से स्पन्दित नहीं हो पाता, तो क्या इस वाणी को भी प्रेम से पूर्ण न होने देंगे? **वाणी की प्रेमपूर्णता हृदय में प्रेम तरंग उत्पादन करने में सहायक होगी।** यदि हमारा आदर्श हमारे सामने है। हम सचमुच उसके लिये प्रयत्नशील हैं, केवल मात्र किसी बाह्य प्राप्ति के हेतु ऐसा नहीं करते, मैं इसे ढोंग न कहकर साधना कहूँगा। (पत्र 252, पृष्ठ 232)

❖ ❖ ❖

न ही खूब दृढ़ता चाहिये और न ही कठोरता। **दृढ़ता प्राय: परिवर्तन का रास्ता रोक देती है।** (पत्र 252, पृष्ठ 232-233)

❖ ❖ ❖

प्रभु का नाम खूब लीजिएगा। चेष्टा करिएगा कि पल भर के लिए भी नाम न भूलें, राम नाम सभी पातकों को नष्ट करने वाला और शान्ति देने वाला है। (पत्र 254, पृष्ठ 234)

❖ ❖ ❖

कभी व्यक्ति ग़लती से टेढ़ा भी बोले तो क्षमा कर देना चाहिए, जैसे हमसे भी तो ग़लती हो ही जाती है। (पत्र 254, पृष्ठ 235)

❖ ❖ ❖

शान्ति का पथ एक ही है और वह है अनन्यभाव से प्रभु शरण हो जाना, अपने को सौंप देना, जैसे बालक माँ की गोदी में सौंप देता है अपने को, अपने भार को और अपनी चिन्ताओं को, हम ज़रा उसके आगे झुकना तो सीखें, उसे पुकारें तो सही, उसे अपने हृदय में स्थान देने के लिए तैय्यार तो हों, उसका शान्तिप्रद वरद-हस्त हमें अपने सिर पर प्रतीत होने लगेगा। **मनुष्य अपनी चातुरी के कारण परेशान होता है।** हमारे लिए अन्तिम देनदारी प्रभु की है। वही ज़िम्मेदार है उस सब कुछ के लिए जो हमें बोझा दिखाई पड़ता है अपने कन्धों पर। हम से जो बन पड़ेगा हम करेंगे परन्तु वह किया कराया सभी उसी के चरणों पर रख देंगे, पूजा के फूलों की तरह, ज़िम्मेदारियों को तो वही चुका सकता है और चुकायेगा। (पत्र 256, पृष्ठ 235)

❖ ❖ ❖

नाम का सहारा लीजियेगा, पेट भर करिएगा, भावना को जागृत करिए, प्रभु भक्ति के पद गाया करिएगा, थोड़ा समय नाम कीर्तन भी करिएगा, प्रातः सायं बैठने के अतिरिक्त दिन में भी स्मरण करिएगा। (पत्र 256, पृष्ठ 236)

❖ ❖ ❖

यह समझने की आवश्यकता है कि भगवान् हमारे अन्तरतम में हमारे समीपतम और हमारे परम हितैषी हैं यह अनुभव्य है। अनेकों ने अनुभव किया है और अब भी करते हैं, यहाँ तर्क की गुंजाइश नहीं, तर्क केवल मात्र हमारे विश्वास को भंग कर सकता है, भावना को भी नष्ट कर देता है, यह तर्क का दुरुपयोग है, अपने भीतर भगवान् के प्रति सजीव धारणा जागृत करिएगा और **प्रभु से माँगा भी यही करें कि 'प्रभु**

मुझे अपना विश्वास दें, अपना सच्चा प्रेम दें और भक्ति दें!' भगवान् आप पर कृपा करेंगे। (पत्र 256, पृष्ठ 236)

❖ ❖ ❖

आपने मेरा मार्ग पूछा है। मैं स्वयं नहीं जानता। **इतना जानता हूँ, माँ ही मेरा मार्ग है। मेरे लिये प्रमाणिकता है। वही भीतर से संचालन करती आई है, कर रही है, और करेगी।** (पत्र 257, पृष्ठ 237)

❖ ❖ ❖

लोगों की बाँह भी वही पकड़ती है और उन्हें भी वही ले जाती है जो मुझे ले जाती है। बड़प्पन है, गुरुत्व है, और पथ प्रदर्शन है तो उसी का है। केवल मात्र इस मन वाणी द्वारा यह प्रकट होता है, जैसा और जितना वह चाहती है। (पत्र 257, पृष्ठ 237)

❖ ❖ ❖

इस शरीर से जो प्रकट होता है सो वही है। ऐसा ही समझ में आता है। (पत्र 257, पृष्ठ 237)

❖ ❖ ❖

मैं आर्य समाजी नहीं हूँ, और हूँ भी। आर्य समाज की बहुत सी सामाजिक बातें मुझे देश, काल के अनुकूल और अनुकरणीय प्रतीत होती हैं। अछूतोद्धार, विधवा विवाह, स्वदेशी, स्वभाषा आदि। परन्तु आध्यात्मिकता में मैं आर्य समाज से नितान्त दूर हूँ।(पत्र 257, पृष्ठ 237)

❖ ❖ ❖

अवतारवाद के रहस्य को मैं समझता हूँ। इस भाग को प्रभु तक ले जाने वाला मानता हूँ। परन्तु माँ ने तो मुझे वह रास्ता दिया नहीं है। वास्तव में मैं किसी भी रास्ते को सबसे बड़ा मानने को तैय्यार नहीं हूँ, न अपने वाले रास्ते को ही। (पत्र 257, पृष्ठ 238)

❖ ❖ ❖

मर्यादा पुरुषोत्तम राम की मर्यादा, विनय, प्रीति, त्याग सभी प्यारे लगते हैं। हनुमान सा मैं सेवक हो जाऊँ, विभीषण सा दास हो जाऊँ–परन्तु अभिमान न रहे सेवकत्व का भी। जो बना दे सो वही बना दे, और बनाने की ज़िम्मेदारी भी उसी की रहे। (पत्र 257, पृष्ठ 238)

❖ ❖ ❖

व्यवहार में भी आपे से बाहर होना मुझे प्रभु से बाहर होना दिखाई पड़ता है। भावुकता और आवेश मुझे लालायित करते ही नहीं। सिद्धियाँ भी गणना में नहीं आतीं। माँ ही एक सिद्धि है। वही करने वाली है जो सभी सिद्धियों की स्वामिनी है। वह जो चाहे जिस समय कर सकती है। जो ज्ञान प्रदान करना चाहे कर सकती हैं। (पत्र 257, पृष्ठ 238)

❖ ❖ ❖

श्री तुलसीदास जी का मैं आदर करता हूँ, परन्तु तुलसीदास जैसा मैं बनना नहीं चाहता। होना चाहता हूँ 'कुछ नहीं'। ऐसा होना चाहता हूँ कि माँ ही माँ रहे, और कुछ रहे ही नहीं। उसी की लीला और उसी का ही रूप। 'यह आपा दूसरा भार हुआ। मुझमें तुझमें वह अन्तराय है।' (पत्र 257, पृष्ठ 238)

❖ ❖ ❖

श्री मीरा के बारे में विश्वास रखता हूँ कि आन्तरिक साधना की प्राप्ति होने पर उसका पागलपन समाप्त हो गया था। वह सौम्य हो गई थी। मध्य युग के सन्तों को - कबीर, दादू आदि को - मैं बहुत आदर की दृष्टि से देखता हूँ। सिक्ख गुरुओं को मैं बहुत मानता हूँ। विशेषकर पहले वालों को। (पत्र 257, पृष्ठ 239)

❖ ❖ ❖

श्री अरविन्द की साधना से मेरी साधना मेल खाती है। परन्तु उनकी सभी बातें मेरे लिये मान्य नहीं हैं। आधुनिक विज्ञान को और मनोविज्ञान को मैं आदर देता हूँ। मैं उन्हें अध्यात्म का विरोधी न समझ कर सहायक समझता हूँ। (पत्र 257, पृष्ठ 239)

❖ ❖ ❖

मैं वेदान्ती भी हूँ और नहीं भी। **अद्वैत में मेरा विश्वास है। मेरी माँ ही तो पुरुषोत्तम है और वही एकमात्र सत्ता है।**

(पत्र 257, पृष्ठ 239)

❖ ❖ ❖

मैं तो कर्म को साधन मानता हूँ प्रभु के समीप होने का।

(पत्र 257, पृष्ठ 239)

❖ ❖ ❖

माँ की कृपा मेरी साधना में सर्वस्व है। वही पथ प्रदर्शक में बैठी बोलती है और आगे ले जाती है। वही गुरु में वास्तविक गुरु है। **वही नाम देने वाली है। जिस नाम का भी निर्देश करे उसी नाम से उसका साधक में अवतरण होने लगता है और उसी के द्वारा उसका काया कल्प। अतः नामों का महत्व नहीं। उसकी कृपा का महत्व है।**

(पत्र 257, पृष्ठ 239)

❖ ❖ ❖

'महाशक्ति माँ है। वह कृपा करती है। अपना लेती है। अवतरित होती है। और वह क्रमशः निर्मल करती हुई व्यक्ति को कृत-कृत्य कर देती है।'

(पत्र 257, पृष्ठ 239)

❖ ❖ ❖

प्रभु अनन्त हैं और उनके रास्ते अनन्त हैं। मेरे लिये तो वही रास्ता है जिस पर वह ले जा रहे हैं। मैं इसे कुछ-कुछ समझता हूँ और कहता हूँ। जो मेरी ओर देखते हैं उन्हें मैं दे भी तो यही पाता हूँ। करती कराती तो वही महाशक्ति है।

(पत्र 257, पृष्ठ 240)

❖ ❖ ❖

कोई कुछ कहे, उससे हम न बड़े बन जाते हैं और न छोटे ही होते हैं, सत्य का झूठ किसी के कहने से नहीं होता और न ही बुराई को भलाई कहने से बन जाती है। नेकी के रास्ते पर चलना चाहिये। और फिर दुनियाँ की परवाह न करनी चाहिये। **रास्ता दिखाने के लिये सदैव प्रभु से प्रार्थना करनी चाहिये।** गर्व पैदा हो तो और भी झुक जाना चाहिए और प्रभु से प्रार्थना करनी चाहिये कि देव इसे क्षीण कर दो। नाम पतितों का उद्धार करने वाला है। दिल और दिमाग को साफ करता है। प्रभु भक्ति देता है, सच्चरित्रता देता है। जीवन को सुखमय कर देता है। प्रभु को हृदय में प्रकट कर देता है। पल-पल स्मरण चलना चाहिए, कभी भूलना नहीं चाहिये। एकमात्र अवलम्बन है प्राणी का। जिसका और कोई नहीं, उसका भी नाम ही है और वह प्रभु है।

(पत्र 258, पृष्ठ 240)

❖ ❖ ❖

जो घटे उसे तटस्थ देखते ही चले जाना है। यह सभी माँ का ही खेल हो रहा है। जीवन भी उसी की देन है और मृत्यु भी। दोनों को समभाव

से स्वीकार करना मनुष्य को सीखना है, अपने लिए भी और दूसरों के लिये भी। (पत्र 259, पृष्ठ 241)

❖ ❖ ❖

कर्म भोग भोगने से ही कटता है - ऐसा समझ में आता है। सभी विधान उसी के अनुकूल बन जाते हैं। हितैषी लोग खड़े देख ही सकते हैं। उनके किये भी कुछ बनता नहीं। तभी मनुष्य की समझ में आता है कि उससे परे भी कोई शक्ति है। उसी के हाथों में वह है। उसकी कृपा की तब वह अपेक्षा करने लगता है। अपने बल का गर्व क्षीण हो जाता है तब। (पत्र 259, पृष्ठ 241)

❖ ❖ ❖

जीवन में अनेक गतियाँ प्रकट होनी स्वाभाविक हैं। यदि अन्तरात्मा में समर्पण की भावना बनी रहे और प्रभु का हो जाने के लिये पुकार हो तो सभी लहरें गुज़र जाती हैं और हम आगे ही आगे उसकी ओर बढ़ते चले जाते हैं। अनुकूल और प्रतिकूल - सभी प्रभाव इसी ओर ले जाने वाले बन जाते हैं। वह प्रभु हमें सदैव संभाले रहते हैं। उठाये लिये चले जाते हैं। (पत्र 259, पृष्ठ 241-242)

❖ ❖ ❖

माँ मंगलमयी तो है ही। वह हमारा परम हित हम से अधिक जानती है और करती है। यह पूरी तरह से सत्य है। इस विशाल सत्य को जानते हुये, मानते हुये, ज़रा व्यक्ति के दृष्टिकोण में आइयेगा। व्यक्ति माँ को चाह सकता है। चाहता है और उस चाह का प्रत्युत्तर भी आता है। उसके फलस्वरूप उसमें शक्ति का अवतरण होता है। यह भी उतना ही बड़ा सत्य है उतना ही पूरा सत्य है। वह सब में समाई हुई है। और सभी को आगे ले जा रही है। तिस पर भी जब हम कहते हैं 'माँ तू आ, और मुझे अपना ले', तो माँ की शक्ति की बाँह हमारी ओर बढ़ आती है और हमारे अहं को क्षीण करती है। यह भी एक वास्तविकता है।

(पत्र 261, पृष्ठ 243)

❖ ❖ ❖

किसी का शरीर रहना उसके लिये अधिक हितकर है अथवा छूट जाना, हम नहीं जानते हैं। माँ जानती है। **हम कल्याण चाह सकते हैं।**

माँ की कृपा का अवतरण चाह सकते हैं। (पत्र 261, पृष्ठ 243)

❖ ❖ ❖

हम अपने प्रयत्न के द्वारा माँ की क्रिया के लिए रास्ता साफ कर सकते हैं – योग दे सकते हैं, और अपनी विपरीत चेष्टाओं के द्वारा उसके प्रसार को रोक भी तो सकते हैं। (पत्र 262, पृष्ठ 244)

❖ ❖ ❖

प्रात: सायं का बैठना आपको तीव्रता से आगे ले जायेगा।

(पत्र 262, पृष्ठ 244)

❖ ❖ ❖

मैं तो तेज़ी से आगे बढ़ने के पक्ष में हूँ। जो व्यक्ति माँ को समझता है वह तो उससे पूर्ण रूपेण युक्त हो जाना चाहता है और उसी का हो जाना चाहता है। मीनमेख के लिये गुंजाइश ही कहाँ?

(पत्र 262, पृष्ठ 244)

❖ ❖ ❖

जीवन को, खान-पान को, रहन-सहन को – समूचे व्यवहार को भी साधन के अनुकूल करना आवश्यक है, यदि आप माँ के होना चाहते हैं तो सभी क्षेत्रों में सम्भलना होगा। (पत्र 262, पृष्ठ 244)

❖ ❖ ❖

रामायण का पाठ थोड़ा-सा नित्यप्रति किया करियेगा। कम से कम 5 दोहे तक और पाठ बिल्कुल मन ही मन न होना चाहिये, ज़रा ऊँचे हो। (पत्र 262, पृष्ठ 245)

❖ ❖ ❖

तुलसी रामायण मुझे बहुत प्रिय तथा उपयोगी ग्रन्थ लगता है। उसे पढ़ने से आप में पाण्डित्य की भावना भी जगेगी। अत: थोड़ा सा पाठ नित्य प्रति रामायण जी का कीजिएगा। (पत्र 264, पृष्ठ 247)

❖ ❖ ❖

श्रीराम को पुरुषोत्तम का सजीव प्रतीक समझियेगा और सीता माता महाशक्ति की। दूसरे पात्र भी अपने-अपने गुणों के स्वरूप ही हो गये हैं। (पत्र 264, पृष्ठ 247)

❖ ❖ ❖

जितना हम किसी वस्तु में अपना विशुद्ध भाव लगा सकते हैं उतना ही वह हमारे लिए सुख तथा शान्ति को देती है। (पत्र 264, पृष्ठ 247)

❖ ❖ ❖

भक्त तो बाहर की लाचारियों को माँ पर नहीं लादा करता, उनके कारण माँ से माँगा नहीं करता, 'कर जो तेरा जी चाहे, मेरे हित को तू मुझ से अधिक अच्छा जानती है, करेगी और कर रही है यह सभी कुछ तेरा है। और मैं भी तेरा हूँ, अपना ले माँ मुझे पूरी तरह से?' ऐसी पुकार विशुद्ध भक्ति की सूचिका है। (पत्र 266, पृष्ठ 249)

❖ ❖ ❖

अन्तरादेश स्पष्ट होता जायेगा जितना आप उसके सान्निध्य को अनुभव करेंगे, आपको बल भी मिलता चला जायेगा। (पत्र 266, पृष्ठ 248)

❖ ❖ ❖

ममता के तागे को बटोर कर प्रभु चरणों में लगा दीजियेगा। वही हमारा है और हम उस के हैं। उसी के नाते ही और हमारे हैं। वास्तव में वह सभी प्रभु के ही हैं। ममता ही हमें परेशान करती है और दूसरों को भी। प्रभु की इच्छा से ही सभी का जीवन और जीवन की सभी अनुभूतियाँ होती हैं। उसका हाथ सभी के सिर पर है। जहाँ प्रतीत नहीं होता, वहाँ भी है। विश्वास करना चाहिये और हमेशा के लिए निश्चिन्त जैसे बच्चा माँ की गोद में होता है। (पत्र 267, पृष्ठ 251)

❖ ❖ ❖

पिण्डदान तीन पीढ़ी तक ही होता है। औसत लगभग तीस साल होगी। सामान्य व्यक्ति मरने के उपरान्त इतने बरसों तक पिण्ड दान के द्वारा प्रभावित हो सकने योग्य स्थिति में रहता है। (पत्र 268, पृष्ठ 251)

❖ ❖ ❖

भाव भी भोजन होते हैं हमारे भावमय शरीर के लिये और विचार-विचारमय के लिये। श्राद्धादि कर्म में हमारे द्वारा उत्पादित भाव तथा संकल्प पितरों को लाभदायक होता है। (पत्र 268, पृष्ठ 251)

❖ ❖ ❖

यदि किसी व्यक्ति को यह विश्वास हो कि मेरा पिण्डदान न होगा तो मेरी गति न होगी तो सचमुच ही उसका पिण्डदान न होने पर वह

आगे नहीं बढ़ सकता। उसकी यह धारणा ही उसके लिए बन्धन रूप हो जाती है। (पत्र 268, पृष्ठ 252)

❖ ❖ ❖

हम इन क्रियाओं के द्वारा पितरों की सहायता कर सकते हैं, इतना निश्चित है, परन्तु यह कहना कि इनके न होने पर व्यक्ति की गति नहीं होती, ग़लत होगा। (पत्र 268, पृष्ठ 252)

❖ ❖ ❖

प्रभु पर निर्भरता तथा धैर्य से जीवन की सभी समस्यायें हल हो जाती हैं। आखिर यहाँ पर स्थायी क्या है, जिससे हम मोह करें और जिसके बनाये रखने के लिए व्याकुल हों! हम और हमारा सभी कुछ उसी का है और उसी प्रभु का उस पर अन्तिम अधिकार है। उसी को सभी कुछ अर्पण किए रहना है। शान्ति का पथ है। (पत्र 270, पृष्ठ 254)

❖ ❖ ❖

वियोग का जीवन में एक स्थान है। वह हमें आसक्ति के बन्धन का भान लखाता है। जो कुछ भी हम स्थायी समझे बैठे हैं वह जाने वाला है। **अतः प्यार करना चाहिये सभी से परन्तु स्थायित्व के धोखे में नहीं रहना चाहिये।** क्या हमें हमेशा यहीं रहना होगा? क्या दूसरों को हमेशा यहीं रहना होगा? **जीवन में वियोग अवश्यम्भावी है।**

(पत्र 274, पृष्ठ 256)

❖ ❖ ❖

माँ से अन्तर की वेदनाओं को कह देना चाहिये। माँ से दुराव न रखना चाहिए और माँ से हठ न करना चाहिए। हठ करके हम अपना ही तो नुकसान करेंगे। माँ जो चाहे तू कर। मेरी अपनी इच्छायें कुछ भी न रहें, माँ। यह जो उभड़ती हैं, यह भी तेरे चरणों में अर्पित हैं। माँ मेरी आसक्ति हो तो तेरे ही चरणों में।" (पत्र 274, पृष्ठ 257)

❖ ❖ ❖

साथी हमारा केवल भगवान ही है। चैन भी इसी में है। और किसी से कहीं पर सुख का सौदा करना ग़लत। क्योंकि हमें सुख मिलता नहीं इसलिये हम दूसरों से क्यों माँगें। यह भी उतना ही ग़लत।

(पत्र 278, पृष्ठ 260)

❖ ❖ ❖

मैं समझता हूँ भगवान का विधान मनुष्य के लिए परम मंगलमय होता है शारीरिक कष्ट उसके आन्तरिक तथा बाह्य विकारों को शान्त करने का साधन ही होता है। (पत्र 281, पृष्ठ 264)

❖ ❖ ❖

यह शरीर प्रभु का ही है वह जब चाहे इसे ले लें। ऐसा सोचना चाहिए और हमेशा खुशी खुशी इस शरीर को छोड़ने को तैयार रहना चाहिए। (पत्र 282, पृष्ठ 264)

❖ ❖ ❖

भगवान हमारा जन्म मरण का साथी है वह हमें कभी नहीं भुलाता है भूलते हैं तो हम ही भूल जाते हैं प्रार्थना तो यही होनी चाहिए कि तेरी स्मृति सदैव बनी रहे तेरी प्रीति सदैव बढ़ती चली जाये। (पत्र 282, पृष्ठ 264)

❖ ❖ ❖

व्यभिचार का फल बहुत घोर होता है। शास्त्र तो कहते हैं व्यक्ति अगले जन्म में कुष्टि हो जाता यदि इस जन्म में नहीं तो। कुष्ठ का रोग तो इस कारण से होता मैंने भी देखा है, इसी जन्म में।(पत्र 286, पृष्ठ 268)

❖ ❖ ❖

हमारी लगन हमारी उन्नति का मापदण्ड रहेगी। प्रभु चरणों में जितनी प्रीति हमारे हृदय में जग जायेगी, उतनी वह प्रीति स्थिर होगी और **जितना हम उसकी कृपा पर निर्भर रहना सीख जायेंगे, उतना ही हम उसकी ओर बढ़ते चले जायेंगे।** हमारा अन्त:करण निर्मल हो जायेगा और उसकी कृपा हमें पवित्र करके उसकी ओर उठाती चली जायेगी। (पत्र 287, पृष्ठ 268)

❖ ❖ ❖

आध्यात्मिक उन्नति को मापने का मापदण्ड हमारे भीतर बढ़ती हुई समता, शान्त होते हुए काम क्रोधादि और विकसित होता हुआ प्रेम ही तो है। (पत्र 287, पृष्ठ 268)

❖ ❖ ❖

संसार में अनेक तरीके हैं, प्रभु की ओर बढ़ने के। हम सभी पर तो चल नहीं सकते, सभी हमारे लिये अनुकूल भी नहीं। हमें

एक चुनना होता है। उसकी कमियाँ और विशेषताएँ रहती हैं। उनको स्वीकार करके उसी पर कदम बढ़ाते चले जाना चाहिए। जो मौलिक बातें हैं उनके महत्व को भली प्रकार हृदयंगम कर रखना चाहिए। जो व्यक्ति हमारे वाले पथ पर चलते हैं, उनको भी प्रभु कृपा प्राप्त होती है और वे शान्त होते चले जाते हैं। (पत्र 287, पृष्ठ 269-270)

❖ ❖ ❖

नाम की दृष्टि से ओम् भी उसी का नाम है और राम भी। नामी प्रधान है। नाम के बारे में झगड़ना बेकार है। मानसिक ताना बुन कर नाम में जितने भी चाहें अर्थ माने जा सकते हैं। (पत्र 287, पृष्ठ 270)

❖ ❖ ❖

मन्त्र की दृष्टि से ओम् एक बीज है और राम भी। दोनों की क्रिया में अन्तर है। ओंकार का और केन्द्रों पर विशेष प्रभाव होता है और राम का और केन्द्रों पर। जिस साधन पथ पर हम चलते हैं, राम उसके अनुकूल है। वह हमारे लिये सजीव शक्तिसम्पन्न तथा आशीर्वादयुक्त है।

(पत्र 287, पृष्ठ 270)

❖ ❖ ❖

प्रभु चरणों में प्रीति बढ़ाइये। सन्तों की वाणी, सन्तों के चरित्र और रामायण जैसे ग्रन्थ का भावपूर्वक पठन इसमें सहायक होगा।

(पत्र 287, पृष्ठ 270)

❖ ❖ ❖

स्वधर्म का क्षेत्र पहचान कर उस पर भावना से चलने में ही समाज का कल्याण है, इसी में व्यक्ति का कल्याण है। समाज सुधारक बनने से बना नहीं जाता। बड़े बड़े काम तो प्रभु पकड़ कर करवा देते हैं, और उन कृत्यों में अहं नहीं होता, खेंचातानी नहीं होती। वह सहज कृत्य होते हैं। यह दैवी कृत्यों का लक्षण है, वह भगवान की शक्ति ही वास्तव में करती है। मनुष्य नहीं करता। (पत्र 289, पृष्ठ 271)

❖ ❖ ❖

हमें सत्यपथ के पथिक होने की चेष्टा करनी है, चेष्टा ही तो हम कर सकते हैं। दावा तो न करना चाहिये। संसार में बहुत गन्दगी है, हम में भी बहुत गन्दगी है। हमारी गन्दगी से संसार और भी गन्दा है। हम

अपने को संसार से अलग और ऊपर देख ही कैसे सकते हैं? भंगी की तरह झाड़ू को बरतना होता है, पहले अपने भीतर। हमें भीतर सफाई करते देख कर सम्भवत: औरों का मन भी ललचा जाये, वह भी सफाई करना चाहें। (पत्र 289, पृष्ठ 271-272)

❖ ❖ ❖

यह काम अपने किए से पूरा होना मुश्किल है। इसीलिए भगवान ने गीता की समाप्ति पर 'सर्वधर्मान् परित्यज्य' कहा है सो ऐसा करके व्यक्ति जैसे बालक माँ की गोद में सोता है, ऐसे आनन्द में सोता है किए कराये का अभिमान नहीं रहता। (पत्र 289, पृष्ठ 272)

❖ ❖ ❖

अखण्ड जाप के बारे में पहली शर्त उसकी उपयोगिता को समझना है यदि ढंग से श्रद्धापूर्वक जाप हो तो मेरी समझ में व्यक्ति को इतना लाभ होता है जो कई सप्ताह सामान्य रूप से साधन करने से हो। (पत्र 290, पृष्ठ 272)

❖ ❖ ❖

भगवान की कृपा होती है तभी समझ में आता है कि नाम अमूल्य रत्न है और उसी की कृपा से ही नाम के लिए अवसर भी मिलता है। यदि और लोग उसे महत्व न दें तो बुरा मानने की अथवा उन्हें बुरा समझने की आवश्यकता नहीं उनके लिये प्रभु से प्रार्थना करनी चाहिये। प्रभु उन्हें सद्‌बुद्धि दें, अपने नाम की प्रीति दें। (पत्र 290, पृष्ठ 273)

❖ ❖ ❖

जैसे-जैसे साधन चलता है, व्यक्ति के जीवन में (और रुचियों में) स्वत: परिवर्तन होता चला जाता है। हमारा मुख्य आधार नाम है। उसी के आश्रय हम चलते हैं। प्रभु कृपा पर निर्भर रहते हैं। उसकी शक्ति हमारे में अवतरित होती हुई जीवन को बदल देती है। भीतर तथा बाहर की समस्याओं को सुलझा कर निश्चिन्त कर देती है। प्रभु का भान होने लगता है। भीतर तथा बाहिर। (पत्र 291, पृष्ठ 273)

❖ ❖ ❖

नाम की ध्वनि में ही मन लगायें। आवश्यकता प्रतीत हो अथवा सहज में कोई रूप सामने आये तो उसमें मन लगायें, न आये तो किसी

रूप को लाने की चेष्टा न करें। (पत्र 291, पृष्ठ 273-274)

❖ ❖ ❖

दिन में काम काज में मन में स्मरण करने की चेष्टा करें। सोते समय जाप करते करते सो जाइये। राम से घट घट में रमने वाले आनन्दमय कृपा करने वाले भगवान का ही निर्देश होता है। वही दयामयी महाशक्ति है। उसी को पुकारना चाहिये। आप यदि तत्परता से यह करने लग जायेंगे तो कुछ बात बनने लग जायेगी। (पत्र 291, पृष्ठ 274)

❖ ❖ ❖

दुनियाँ में बहुत गन्दगी है। हम भी दुनियाँ में हैं। हममें भी गन्दगी है। हम दुनियाँ को घृणा की दृष्टि से नहीं देख सकते। दुनियाँ से एकदम अलग नहीं हो सकते। परन्तु सत्य-असत्य, उचित-अनुचित का, पाप-पुण्य का विवेक करते हुए आगे बढ़ने की चेष्टा करना हमारा कर्तव्य है। (पत्र 292, पृष्ठ 274-275)

❖ ❖ ❖

हमारी अशान्ति की जड़ें हमारे अहं में रहा करती हैं। वह अहं क्षीण होता है प्रभु चरणों में लिपट जाने से। जब तक हम बड़े बनते हैं, चतुर बन कर चतुराई दिखाने की चेष्टा करते हैं, हमें मुँह की खानी पड़ती है। (पत्र 294, पृष्ठ 276)

❖ ❖ ❖

उसकी इच्छा के आगे सिर झुकाये ही बनता है, परन्तु खुशी खुशी ऐसा करने से तो शान्ति हो जाती है। हताश होकर वैसा करने से कोई लाभ नहीं होता। व्यक्ति प्रभु के निकट भी नहीं हो पाता।

(पत्र 294, पृष्ठ 276)

❖ ❖ ❖

अपने वर्तमान को-उसकी सीमाओं को स्वीकार करके उनको भी प्रभु की देन मान कर सहर्ष निभाते हुये भी प्रभु के समीप होने को, उसका अपने तुच्छ तरीके से भजन करने की चेष्टा व्यक्ति के लिये सर्वथा हितकर होती है आपके लिये और दूसरों के लिये भी। **बड़ी-बड़ी आकाँक्षाओं से तो परेशानी ही परेशानी होगी।** व्यर्थ का अभिमान भी उसी तरह का फल देगा। (पत्र 294, पृष्ठ 276)

❖ ❖ ❖

प्रभु से प्रार्थना करते चले जाना चाहिए कि वह अपने चरणों में प्रीति दें और सच्ची लगन लगायें। इतने मात्र के होने से सभी कुछ हो जाता है। (पत्र 296, पृष्ठ 278)

❖ ❖ ❖

जितनी मात्रा में हम अपने जीवन में प्रभु के अधिकार स्वीकार कर लेते हैं और सिर झुका देते हैं उसके आगे, उतनी मात्रा में शान्ति हो जाती है। हमारी चिन्ताएँ समाप्त हो जाती हैं। अतः बोझा उतर जाता है।

(पत्र 296, पृष्ठ 279)

❖ ❖ ❖

देह को शुद्ध निर्मल रखना अपने लिये नहीं होता प्रभु के लिये, देखने वालों के भीतर बैठकर देखने वाले प्रभु के लिये होता है। शरीर के विषय में जब तक हमसे हो सकता है परवाह करनी ही चाहिये।

(पत्र 300, पृष्ठ 281)

❖ ❖ ❖

जीवन में नियमितता बड़ी बात होती है। इससे व्यक्ति सेवा करने के लिये पात्र बनता है। इससे व्यक्ति साधना में सौम्यता से, और वेग से अग्रसर होता है। **पिशाच के बालों का सा बिखरा जीवन दिव्यत्व का चिह्न नहीं** है। खाना-पीना, उठना-बैठना, सोना-जागना दूसरों से और अपने से व्यवहार, सभी जगह नियमित होना चाहिये। **रजोगुण काम में ही खींचता चला जाता है।** परन्तु इसके ऊपर की स्थिति समझनी चाहिये। करें तो समझ कर स्वामी बनके करें। भीतर में ही बोलने वाले गुणों को ही प्रभु का रूप न मान लें। (पत्र 300, पृष्ठ 281-282)

❖ ❖ ❖

जीवन में से आदर का, प्रीति का, निस्वार्थ सेवा का और श्रद्धा का उठ जाना, जीवन का घोर आघात होगा और पाश्विकता होगी।

(पत्र 302, पृष्ठ 284)

❖ ❖ ❖

दिमाग को खुला करियेगा। अपने जीवन को ऊँचा करियेगा। जो व्यक्तिगत कमियाँ आप को अपने में दिखाई देती हैं, उन्हें दूर करियेगा और जो **व्यक्तिगत आदर्श आपको अपील करता है उसकी ओर**

बढ़ियेगा। (पत्र 302, पृष्ठ 284)

❖ ❖ ❖

एक अच्छे नगारिक-एक अच्छे मनुष्य-एक अच्छे अध्यापक-एक अच्छे पति-तथा पुत्र और पिता बनने की चेष्टा करियेगा। बहुत दिमागी उड़ानों में उड़ने की बजाये कुछ करियेगा। अपने को स्वर्णमय बना डालियेगा। विश्वास का निर्माण करियेगा। यह क्षेत्र कोरे तर्क का नहीं है। कुछ मान कर चलना (और वह भी अनुभवी व्यक्तियों के आधार पर) ही श्रेयस्कर है। मस्तक झुकाने में ही कल्याण है। अनर्गल तर्क व्यक्तियों को भयंकर स्थितियों में ले जाता है। (पत्र 302, पृष्ठ 284-285)

❖ ❖ ❖

बुराई का होना मैं इतनी भयानक बात नहीं समझता, बुराई को बुराई न समझना और उससे छूटने की चेष्टा न करना भयानक अवश्य है। (पत्र 303, पृष्ठ 285)

❖ ❖ ❖

अनवरत आगे बढ़ते जाने की चेष्टा कीजियेगा प्रभु चरणों की ओर। उसके नाम का अवलम्बन परम बल है और परमौषधि भी है। (पत्र 304, पृष्ठ 285)

❖ ❖ ❖

समर्पण करने की चाह दृढ़ तथा स्थिर रहनी चाहिये। समर्पण धीरे-धीरे होने लगेगा। प्रभु से प्रार्थना करनी चाहिये कि वह पूरी तरह से हमें अपना लें। (पत्र 305, पृष्ठ 287)

❖ ❖ ❖

गृहस्थी को गृहस्थ के भार को सुचारुरूप से चलाने के लिये थोड़ा-थोड़ा हर मास बचाना चाहिये। जो बचाय उसे भी प्रभु का समझे, गृहस्थी के भार को भी उसी का समझे, जो कमाये उसे भी प्रभु का ही जाने। इस प्रकार धारणा रखते हुए अर्थोपार्जन और अर्थ संचय से बन्धन नहीं होता। ममता से परे होने का सुगम तथा सौम्य उपाय यही है। अर्थ से भागना भीतर मनोग्रन्थी को सूचित करता है। सौम्य स्थिति तो वह है जब अर्थ बन्धन का कारण न हो। (पत्र 310, पृष्ठ 291-292)

❖ ❖ ❖

जो भार प्रभु ने आपके लिए सौंपा है, उससे घृणा करना अपने लिए कर्म-बन्धन बनाना है। उसे प्रभु कृत्य समझ कर सहर्ष पूरा करना प्रभु के समीप होना और कर्म के पुरातन संस्कार को भी काट डालने का सुगम उपाय है। सभी कुछ हो परन्तु हो प्रभु का ही। हम भी उसी के हों। यही भक्ति की सौम्य धारणा है। (पत्र 310, पृष्ठ 292)

❖ ❖ ❖

चित्रों तथा मूर्तियों का प्रभाव भी होता ही है, इसमें कोई सन्देह नहीं। **वह ग्राहक यन्त्र (receivers) बन जाते हैं, ऊँचे लोक से आने वाली तरंगों के और फिर स्वतः ही उनसे प्रसार भी होने लगता है।** चित्र में आकर्षण शक्ति हो सकती है इसीलिए ही भावों को बदल डालने लायक हो जाता है। (पत्र 311, पृष्ठ 292)

❖ ❖ ❖

प्रभु की अनुभूति क्षण में होने वाली घटना नहीं। प्रभु चरणों में प्रीति पैदा करियेगा, उसके लिये जीने की चेष्टा हो, तभी प्रभु के बारे में समझ पैदा होती है और अनुभव के लिये रास्ता खुलता है। थोड़ा रामायण, गीता का स्वाध्याय भले ही दस ही मिनट क्यों न हो आवश्यक है।

(पत्र 313, पृष्ठ 295)

❖ ❖ ❖

प्रभु के आगे झुकना सीखें, सारी शक्ति उसी की है और सारा ज्ञान भी, यह समझने की चेष्टा करियेगा। फिर अभिमान का अंकुर नष्ट हो, राम नाम में निष्ठा बनाइयेगा। आपकी अन्दर बाहर की समस्यायें हल हो जायेंगी। (पत्र 313, पृष्ठ 295)

❖ ❖ ❖

जीवन की समस्या और आध्यात्मिक साधना मैं अलग नहीं देखता। जीवन साधना का क्षेत्र है। उसी की समस्यायें हमारे व्यक्तिगत तथा सामाजिक विकास की आवश्यकतायें हैं उनसे भागना साधना के क्षेत्र से भागना है। (पत्र 314, पृष्ठ 296)

❖ ❖ ❖

हाँ साधना के दो रूप रहते हैं, आन्तरिक जिसमें हम सीधे प्रभु से युक्त होने की चेष्टा करते हैं – उसकी शक्ति को अपने में आवाहन करते

हैं और उसके प्रति समर्पण की चाह करते हैं, दूसरा है बाह्य जिसके द्वारा हम जीवन को साधना बना डालते हैं। जीवन और उसकी समस्या को साधना की, आन्तरशोधन तथा विकास का साधन मानते हुए और जीवन के कार्यो को प्रभु के काम समझते हुए करते चलते हैं। जीवन की समस्याओं का हल भी प्रभु का कार्य समझ कर करना होगा तब वह भी हमारे साधन का अंग बन जायेंगी। (पत्र 314, पृष्ठ 296)

❖ ❖ ❖

जीवन अबाध गति से चलता है। यहाँ एक विकास का क्रम चल रहा है। मनुष्य उसमें योग दे सकता है। वह उसका निर्णायक नहीं होता है। (पत्र 314, पृष्ठ 297)

❖ ❖ ❖

किसी भी कार्य को करने में किसी भी विचार को करने में उसे अपना जीवन के प्रति मौलिक दृष्टिकोण और कार्य के प्रति ऊँची निष्ठा को न खोना होगा। यदि यह दोनों रहते हैं तो कार्य साधना बन जाता है और जीवन के ऊँचे लक्ष्य के साथ मेल खा सकता है।(पत्र 314, पृष्ठ 297)

❖ ❖ ❖

समर्पण का विषय बहुत गम्भीर है। समर्पण क्यों करें, प्रीति ही हमारे समर्पण का कारण हो। समर्पण से व्यक्ति अपने अहं से परे भागवती चेतना से हमेशा के लिये युक्त हो जाता है। समर्पण की चाह ही साधना है। प्रेम का यह स्वाभाविक स्वरुप है। प्रेमी के प्रति समर्पित हो जाने की प्रबल इच्छा, उसका हो जाना ही प्रेम की विश्रान्ति है। भागवती चेतना को लाभ करना जीवन की समस्याओं को हमेशा के लिए हल करना है।

(पत्र 314, पृष्ठ 297)

❖ ❖ ❖

समर्पण कर्तृत्व का है और कर्म का भी है। कर्म सहज हैं। व्यक्ति निश्चेष्ट नहीं होता। समर्पण हो जाने पर कर्म की प्रेरणा व्यक्तिगत न रह कर भागवती हो जाती है। मनुष्य प्रभु का यंत्र बना (कार्य) करता है।

(पत्र 314, पृष्ठ 298)

❖ ❖ ❖

बाह्य समता आन्तरिक समता का सहज प्रकाश हो, जहाँ तक व्यक्ति

के व्यवहार का सम्बन्ध है। आन्तरिक सामंजस्य तथा स्थिरता के बिना उसे स्थिर रखना असम्भव होता है। अध्यात्म विकास की प्रगति में वह स्वतः बढ़ने वाली चीज है। (पत्र 314, पृष्ठ 298)

❖ ❖ ❖

अग्रगति तो प्रभु-कृपा पर ही निर्भर करती है। अधिक से अधिक जो हमारे हाथों में है वह है पुकारना; पुकारें प्रभु प्रीति के लिये, उसके चरणों की सच्ची लगन के लिये। पुकारिये गहरे से और पुकारते जाइयेगा। वह कृपा करेगा। सच्ची लगन लग जायेगी तो सभी कुछ स्वतः ठीक होता चला जायेगा। (पत्र 316, पृष्ठ 301)

❖ ❖ ❖

अपने दृष्टिकोण को शुद्ध तथा निर्मल देखने के लिए आवश्यक है, स्वाध्याय तथा मनन। सोते समय तो विचार-धारा संसार से हटी ही रहनी चाहिये। (पत्र 316, पृष्ठ 301)

❖ ❖ ❖

नाम एक अमूल्य रत्न है। नाम के द्वारा अन्तरमल धुलते चले जाते हैं। व्यक्ति अधिकाधिक प्रभु के हाथों में पड़ता चला जाता है। वह भीतर पैठता चला जाता है और भीतर से ही सभी कुछ निर्मल, दिव्य तथा उज्ज्वल कर देता है। व्यक्ति निश्चिन्त हो जाता है। वह, उस समय महान् शक्ति पर, उस परम मंगलमय देवाधिदेव पर विश्वास रखता है और उसकी कृपा पर निर्भर रहना सीखता है। वह हमारा साथी है और रहेगा, संभाले रहेगा सभी अवस्थाओं में। घबराना नहीं होगा। सब कुछ ठीक होगा। वह समर्थ हैं हमें सभी घाटों से पार कर देंगे। (पत्र 318, पृष्ठ 303)

❖ ❖ ❖

नाम mechanical होता है। इसमें कोई भय नहीं। भाव के जगत् से ज़रा भी ऊपर जाने पर ऐसा ही लगेगा, ऐसा लगेगा कि स्वयं होता है। हम कुछ करते ही नहीं। वैसा होने पर एक शान्ति का साम्राज्य तो आता जाता है, स्थिरता भी आती जाती है जीवन में। निर्मलता तो आती जाती है मति में। यह सभी भगवान के ही तो रूप हैं। उसकी कृपा के ही प्रदर्शन हैं। नाम के प्रभाव के ही तो सूचक हैं। भाव की लहरें भी आयेंगी। आनन्द की हिलोरें भी आयेंगी। परन्तु, उनके लिये उतावले नहीं होना।

वह तो अपने आप ही धीरे-धीरे अपना स्वरूप प्रकट करे यदा कदा वही अच्छा है। **अपना घर शान्ति में बनाना है, आनन्द में नहीं।** वहाँ स्थिरता है और स्थायी पावनता। (पत्र 318, पृष्ठ 303-304)

❖ ❖ ❖

लोगों से बरतते हुये भी, उनकी आवश्यकता होने पर सहायता करते हुये भी निर्लिप्त रहना सीखना चाहिये। (पत्र 319, पृष्ठ 304)

❖ ❖ ❖

विचारों की धारा लौट-लौट कर यदि पुराने रास्ते पर पड़ जाती है तो विस्मय नहीं। संस्कार तो धीरे-धीरे क्षीण होता है। न ही निराश होना चाहिये। प्रयत्न से सफलता बिल्कुल निश्चित ही है। नव संस्कारों के निर्माण की चेष्टा करनी चाहिये जो ऊँचे हों। वह अध्ययन से, मनन से तथा कार्य रूप में बरतने से बनते हैं। भगवान का नाम, प्रभु चरणों में प्रीति, सभी निम्न कोटि के संस्कारों को भस्म कर देता है यह निश्चित जानिये, समय तो लगता ही है, यह काम धीरे-धीरे हो सकता है।

(पत्र 320, पृष्ठ 304-305)

❖ ❖ ❖

ज़िम्मेदारियों को भी तो प्रभु चरणों में रख देना होगा। दिमाग से बोझा उतार कर जो बन पड़े सो करना होगा, जैसे प्रभु की आज्ञा का पालन समझ कर, उसके चरणों में अर्पित पूजा के फूल समझ कर। बिना ज़िम्मेदारियों वाली परिस्थितियों में से निकले हुए समर्पण की ठीक तस्वीर दिखाई नहीं देती। ज़िम्मेदारियाँ उसकी हैं, यदि हम उसके हैं तो हमारा सर्वस्व उसका है तो वह जैसे चाहेगा पूरा करवायेगा। हम काम के लिए तैय्यार हैं। ज़िम्मेदारी को पूरा करने का श्रेय भी नहीं चाहते।

(पत्र 320, पृष्ठ 305)

❖ ❖ ❖

थोड़ा सा स्वाध्याय, चाहे 15-20 मिनट ही हो, सोने से पूर्व कर लेना बहुत हितकर होता है। उसका प्रभाव सुप्त चेतना पर पड़ता है। फिर नाम का चिन्तन करते हुये सो जाना चाहिये। (पत्र 320, पृष्ठ 305-306)

❖ ❖ ❖

प्रभु नाम के प्रभाव से कामनाएँ शान्त हो जाती हैं। पूरी होने वाली

पूरी होकर निपट जाती हैं। साधक को भीतर उभरने वाली कामनाओं को प्रभु के आगे रखकर कह देना होता है – दिल से, 'चाहे तो इसे पूरा कर दो और चाहे तो इसे मिटा दो। यह आपके अर्पण है।'

(पत्र 320, पृष्ठ 306)

❖ ❖ ❖

नाम के प्रभाव की वास्तव में कोई सीमा नहीं। सीमा है तो हमारे विश्वास की। यदि वह तत्काल प्रकट नहीं हो रहा तो यही समझना चाहिए कि हमारे संस्कार बहुत प्रबल हैं, समय की जरूरत है, और हमारा विश्वास दुबला है करते करते नाम का प्रभाव प्रबल होगा और विश्वास जग जायगा तो सभी कुछ हो जाएगा। (पत्र 322, पृष्ठ 307)

❖ ❖ ❖

शान्ति का उपाय बाह्य जगत में आशा को बनाये रखना नहीं है। उससे धुकधुकी लगी ही रहती है और हृदय तड़पता ही रहता है प्रभु चरणों में अपने जीवन को डाल देने से, हृदय को बड़ा करके सभी कुछ प्रभु की देन समझ कर स्वीकार करने के लिए – हँसते हँसते सह लेने के लिए – तैयार रहना चाहिए। आपके किन्हीं प्रतिकूल संस्कारों के क्षय का ही सामान है यह विषम परिस्थिति। (पत्र 322, पृष्ठ 307)

❖ ❖ ❖

प्रभु से ठीक बुद्धि और प्रभु चरणों में प्रीति के लिए प्रार्थना किया करिएगा वह सुन लेता है और कृपा करता है – विश्वास जानिएगा।

(पत्र 322, पृष्ठ 307)

❖ ❖ ❖

जो हुआ उसका विचार करना तो लाभदायक है नहीं। दूसरे की बुराई से मन न मैला करने का तरीका मैं ने कहा है दूसरा बुरा है तो अपने लिए बुरा है हम बुरा सोचकर क्यों बुरे बनें। जैसा हम सोचेंगे वैसे हम बनेंगे। उसकी बुराई के पीछे न जाने प्रभु ने हमारे लिए क्या भलाई रक्खी हो, न जाने कर्म की कौन गति पीछे छिपी है। (पत्र 322, पृष्ठ 307)

❖ ❖ ❖

जिसने तन दिया है वह उस तन की रक्षा करेगा ही जब तक वह चाहेगा यह उसकी चीज समझनी चाहिए इतने दिन काटे हैं वह आगे भी

निभा देगा। (पत्र 322, पृष्ठ 307-308)

❖ ❖ ❖

जीवन को निर्मल बनाना, पूज्यतम देव परम प्रभु के चरणों में अर्पित करने की चेष्टा करना यही जीवन की सफलता है। यदि हृदय में सच्ची लगन है, तो रास्ता अवश्य मिलेगा। वह प्रभु तो सभी पर दृष्टि रखता है चाहने वालों को चाहता है, निश्चित जानियेगा। वह तो न चाहने वालों को भी अपनी ओर खींचे लिये जा रहा है। अध्यात्म साधना के क्षेत्र में निराशा का कोई काम नहीं। पुकार में गहराई और सच्चाई होनी चाहिये सुनने वाला और कृपा करने वाला तो हमारा अंगी संगी ही है। वह कुछ भी कर सकता है। (पत्र 323, पृष्ठ 308)

❖ ❖ ❖

जब हम अपने को ही अथवा किसी मनुष्य को अपने भाग्य का विधाता मान लेते हैं तो परेशानी स्वाभाविक हो जाती है। जब हमारी दृष्टि मनुष्य से परे प्रभु पर पड़ती है जो सभी के हृदय में बैठा खेल खेलता है तो निश्चिन्तता होती है। **हमारा कोई भी कुछ बिगाड़ नहीं सकता हमसे जो घटेगा सो हमारे कल्याण के लिये ही होगा।** वह प्रभु हमारा परम हितु है। उसके समान हमारा कल्याण कौन सोच और कर सकता है। (पत्र 323, पृष्ठ 308)

❖ ❖ ❖

हमारी दृष्टि मानुषी है। हम अपने कल्याण को भी मानुषी पैमानों से मापते हैं। परन्तु प्रभु तो जन्मान्तर के हिसाब से चलते हैं। दु:ख तथा सुख, उत्थान तथा पतन तो वह अपने तरीके से ही देखते हैं और ऐसे ले चलते हैं जिसमें परम कल्याण हो। (पत्र 323, पृष्ठ 308)

❖ ❖ ❖

विवाह एक साधना है, तपस्या है। विवाह प्रभु के विशाल यज्ञ का ही अंश है। यज्ञ रूप! मातृत्व एक महान् साधना है। महाशक्ति माँ की प्रतिमूर्ति हो जाना है। त्याग तथा निस्वार्थता के पाठ पढ़ने का सुगम पथ है, और प्रभु मिलन का भी। (पत्र 323, पृष्ठ 309)

❖ ❖ ❖

जिस रास्ते पर वह चलाता है उसे ही ठीक तरीके से समझने की

चेष्टा करनी चाहिये। इसी से मार्ग सरल और सुगम हो जायेगा। न समझने के कारण होने वाली परेशानियों से छुटकारा ऐसे ही होगा। यह रास्ता समर्पण का रास्ता है। यह रास्ता नाम का रास्ता है और महाशक्ति के अवतरण का रास्ता है। जितना समर्पण पूरा होगा उतना ही वह प्रभु हम पर अधिकार कर लेंगे और हमें ढाल देंगे अपने रूप में और युक्त कर लेंगे अपने से। हमें यह चुनने का भी अधिकार नहीं है कि हमें तुम ऐसा बनाओ और ऐसा न बनाओ। ऐसा सोचना तो बुद्धिगत धारणाओं का फल होगा तथा इसका अर्थ होगा समर्पण करने से इन्कार करना। वह धारणायें सभी अहं-मूलक ही होती हैं और अहं ही हमारे और प्रभु के बीच में खड़ी होने वाली चीज़ है। वह प्रभु हमारे हित को हमसे अधिक जानते हैं, ऊँची-नीची गतियों को भी हमसे अधिक जानते हैं, वह स्वामी हैं उसी का होने में हमारा परम कल्याण है और परम तृप्ति है। बस वह अपना कर ले पूरी तरह से जैसा चाहे कर ले, यह उसे पूर्ण अधिकार है।

(पत्र 323, पृष्ठ 310)

❖ ❖ ❖

हमें समर्पण करने के लिये तैय्यार होना है। दिमाग का समर्पण-जिसे सन्त सिर देना कहते हैं, दिल का समर्पण, प्राण का और कण-कण का समर्पण-तभी तो समर्पण पूरा होता है। दिमाग का समर्पण का अर्थ है अपनी बनाई हुई सभी धारणाओं को, आदर्शों के, भले बुरे के पैमानों को मानापमान के माप दण्डों को सब कुछ ही उसके चरणों में रख देना, उन्हें छोड़ने के लिये तैय्यार हो जाना। ''मैं ऐसे सोचता हूँ पर वास्तविकता को तू ही जानता है। जो ठीक है उधर ही ले चल, वही करवा, जो बनाना चाहे बना ले। तेरी इच्छा पूर्ण हो माँ!

मन में मेरे तन में मेरे, बुद्धि में भी पूर्ण हो माँ।
सर्वथा परिपूर्ण हो माँ! तेरी इच्छा पूर्ण हो माँ।।

(पत्र 323, पृष्ठ 310)

❖ ❖ ❖

और दिल का समर्पण है अपनी आसक्तियों को, अपने द्वेषों को, रुचियों को उसके चरणों में रख देना। सभी नातों को उसी से स्वीकार करना होगा। पुत्र है तो उसका बनाया हुआ और बेटी है तो उसकी बनाई हुई।

और हैं सब उसी के, जैसे हम हैं। सभी उसी के अर्पण हैं। वह चाहे तो उन्हें समीप रखे चाहे तो दूर। वह चाहे हमसे उनके लिए जितनी सेवा ले ले और न चाहे तो न ले। सभी कर्तव्य उसी के हैं। हम तो केवल मात्र उसके ''हुक्म के बन्दे'' हैं। **गले राम की जेवरी जित खेंचे तित जाऊँ।** (पत्र 323, पृष्ठ 310)

❖ ❖ ❖

यह धारणा सभी आसक्तियों को क्रमशः क्षीण कर देती है, हमारा नाता प्रभु से ही होता है और उसी के नाते सभी से होता है। हमारा स्वतन्त्र लेखा किसी से भी बाकी नहीं रहता। (पत्र 323, पृष्ठ 310)

❖ ❖ ❖

जहाँ हमें नजदीक होने में डर लगता है वहाँ आसक्ति है ही, जहाँ हम डरते हैं कि समीपता से दुःख होगा वहाँ भी आसक्ति है। मुँह फेर लेने से आसक्ति नहीं मिटती, संस्कार ही दबता है। परिस्थिति से भाग जाने से व्यक्ति में फिर से चिपक जाने की योग्यता दूर नहीं होती। बाल बच्चों से दूर हो जाने से लगाव का अभाव नहीं होता। वह भीतर बना ही रहता है। इससे ऊपर उठने का सुगम उपाय है प्रभु आश्रित हो जाना। (पत्र 323, पृष्ठ 310-311)

❖ ❖ ❖

अपने भोजन में संयम आवश्यक है। रात्रि के भोजन की मात्रा कम करनी ही चाहिये। फिर प्रातः उठना सुगम होगा। नींद अच्छी होगी। अपनी कमज़ोरी को हम किसी की आड़ लेकर छिपाने की चेष्टा न करें, अपने से भी। (पत्र 324, पृष्ठ 311)

❖ ❖ ❖

जो संकल्प-विकल्प आयें उन्हें प्रभु चरणों में रखते जाइयेगा, यदि उपेक्षा नहीं हो सकती तो। अन्तरात्मा से हम प्रभु का हो जाना चाहते हैं, परन्तु इतने मात्र से न तो बुद्धि झुकती है उनके आगे और न मन ही आत्म-समर्पण के लिये तैय्यार होता है। प्राणेन्द्रियाँ भी इतनी लालसाओं का परित्याग न कर पायेंगी। (पत्र 324, पृष्ठ 311-312)

❖ ❖ ❖

'प्रभु की इच्छा ही सर्वोपरि है, जब तक यह बात समा नहीं जाती

कण-कण में, तब तक स्थाई शान्ति कहाँ? अपनी समर्पण की भावना को दृढ़ करने का तरीका है संकल्प-विकल्पों को माँ के आगे रखते चले जाना, माँ ही तो भीतर बैठी यह लीला करती है। उसी के चरणों में यह उसी की वस्तु समर्पित है। कर जो तेरी इच्छा है।(पत्र 324, पृष्ठ 312)

❖ ❖ ❖

नाम को जपिये, नाम को भीतर ही भीतर सुनिये। जल्दी-जल्दी जपियेगा। माला से जपियेगा। प्रभु को समीप समझते हुए जपियेगा अर्चना के भाव से, पुकार के भाव से जपियेगा। (पत्र 324, पृष्ठ 312)

❖ ❖ ❖

जितनी नाम की तार मजबूत होगी वैसे ही संकल्प विकल्पों का ताँता छीजेगा। (पत्र 324, पृष्ठ 312)

❖ ❖ ❖

माँ से माँगियेगा 'निज-चरणों का प्रेम अविरल अटल प्रीति।' संकल्प-विकल्प तो सहज में शान्त हो जायेंगे। घबराहट क्या है? (पत्र 324, पृष्ठ 312)

❖ ❖ ❖

वास्तव में यह Surgery ही तो हो रही है। क्या बिना खून निकले, बिना पीप बहे सफाई होती है कभी? (पत्र 324, पृष्ठ 312)

❖ ❖ ❖

बल पाकर तो व्यक्ति ग़लती भी कर सकता है। अपने को सौंप कर ग़लती ही नहीं कर पाता। बच्चा बनना अच्छा है, सियाना बनने की अपेक्षा। 'हम बालक तुम माय हमारी' वाली भावना बहुत शुद्ध तथा ऊँची है। (पत्र 324, पृष्ठ 312-313)

❖ ❖ ❖

सांसारिक प्रयोजनों की सिद्धि के निमित्त मैं अखण्ड जाप को प्रोत्साहित नहीं करना चाहता हूँ। दीन-दुखियों की शान्ति के लिये, सुमति के लिये, जाग्रति के लिये प्रार्थना हो सकती है। धन्यवादात्मक भी हो सकता है, परन्तु व्यक्तिगत प्रयोजनों की सिद्धि के लिये करना मुझे अखण्ड-जाप की पवित्रता पर, शुद्धता पर आघात प्रतीत होता है।(पत्र 324, पृष्ठ 313)

❖ ❖ ❖

विकास का नियम है यदि हम किसी वासना का त्याग नहीं कर सकते तो उसे भोग डालने का यत्न करें। भोगने की चेष्टा की जाती है तो भीतर वाला कहता है यह सभी निस्सार है, क्या मृग तृष्णा के पीछे दौड़ रहे हो! भगवान की ओर लगता है तो वासनायें उसका मन लगने नहीं देती।

(पत्र 326, पृष्ठ 315)

❖ ❖ ❖

इस स्थिति का एक सुगम हल है, सांसारिक भोग को, वासनाओं को तृप्ति को भगवान का आदेश समझकर स्वीकार करना।

(पत्र 326, पृष्ठ 315)

❖ ❖ ❖

जहाँ आप हैं, जो करते हैं उसी को प्रभु की पूजा मान लें। वह कोई बड़ा काम लेना चाहेगा तो उठाकर रख देगा और काम करवा लेगा। उसका श्रेय भी उसी का होगा। (पत्र 326, पृष्ठ 316)

❖ ❖ ❖

प्रभु ने जो आपको शरण दी है और नाम का अनन्य अवलम्बन दिया है उसे स्पष्ट रूप से पहचान लीजिएगा। केवल मात्र उसकी कृपा ही हमारा सर्वस्व है। वही तप है, संयम है, समाधि है और योग है। किसी भी प्रकार के बुद्धिगत आदर्श को सामने रखकर चलना अपने और प्रभु के बीच में एक दीवार खड़ी करनी होगी। समर्पण तो वही वास्तविक है, जिसके पीछे कोई शर्त है ही नहीं। वह जैसा कर दे, जहाँ रखे और जो काम ले अथवा न ले। जब तक हम अपना समझते हैं, अपनी निजी जिम्मेदारी समझते हैं, अथवा कोई और बन्धन को प्रतीत करते हैं, सिवाय प्रभु निर्देश के, तब तक गड़बड़ है। प्रभु निर्देश का पालन तो हर्ष का ही विषय होता है। वह बन्धन नहीं होता, यदि हृदय में भावना है।

(पत्र 327, पृष्ठ 317)

❖ ❖ ❖

प्रभु ने जो स्थिति प्रदान की है उसके लिए उनको धन्यवाद देना चाहिए। उस स्थिति के बने रहने अथवा बदलने की बावत प्रभु पर ही छोड़ देना चाहिए। वह जैसा ठीक समझें वैसा करें। वह हमारे हित को हम से कहीं ज्यादा जानते हैं। हम तो कुछ भी नहीं जानते। उन पर छोड़ने से निश्चिन्तता

भी होती है और प्रभु की कृपा की प्रतीति भी। (पत्र 329, पृष्ठ 319)

❖ ❖ ❖

आदर्श साधु क्या होता है? जो भगवान को साथ ले - उसका हो जाए पूरी तरह से। जिसका अपना-पन सध जाये अर्थात् मिट जाये प्रभु में? यदि इसे ही आदर्श साधु कहते हैं, तो गृहस्थ भी आदर्श साधु हो सकता है। यह भीतर की शर्त पूरी होनी चाहिए। प्रभु चरणों में बढ़ती हुई प्रीति और पूरा होता हुआ आत्मसमर्पण, प्रभु कृपा के रूप में फलित होकर व्यक्ति को आदर्श साधु बना देते हैं। प्रभुमय हो जाना, उसी के लिये जीना, उसी में जीना, यही आदर्श पथ की ऊँची साधना है। प्रभु आपको यही प्रदान करे। आपकी पुकार फलित हो।(पत्र 330, पृष्ठ 320)

❖ ❖ ❖

शक्ति के जग जाने पर भीतर सफाई की क्रिया चलने लगती है। भीतर के संस्कार उखड़ने लगते हैं। उनके कारण उतार चढ़ाव होते हैं। कभी शिथिलता और कभी तेज़ी। इसके साथ ही महाशक्ति का भी अवतरण होने लगता है। उसके दबाव के कारण भी शिथिलता होती है। असफलता के तो कोई पुराने विचार रहे होंगे जो उमड़ते हैं। देखती चली जाइयेगा - इन सभी तमाशों को। सभी कुछ ठीक होगा। (पत्र 330, पृष्ठ 320)

❖ ❖ ❖

जो साकार है, वही निराकार है और जो निराकार है, वही साकार है। सत्ता तो एक ही है। साकार को आकार में सीमित हम कैसे समझ सकते हैं? (पत्र 331, पृष्ठ 321)

❖ ❖ ❖

अपना नाता तो उससे जोड़ना है जो सभी आकारों का स्रोत है। सभी का आदि है। प्रेम का आदि है, वही जो अनन्त है। नाता जोडें किसी भी आधार को लेकर, किसी भी रूप, गुण अथवा नाम के आधार को लेकर! (पत्र 331, पृष्ठ 321)

❖ ❖ ❖

अपनेपन को मिटा देना पूर्ण भक्ति का रास्ता है। जब तक सफाई पेश करने की इच्छा है, तब तक अहं बाकी है और क्लेश का भी यही कारण है। दयालु माँ ऐसी परिस्थितियाँ पैदा करके ही उसको उसकी स्थिति

का बोध कराती है और.... प्रयत्न करती है। (पत्र 333, पृष्ठ 322)

❖ ❖ ❖

जब तक परिस्थिति में, दूसरों में दोष ढूँढा और उनकी गल्ती से स्वयं सन्तोष पाने की ....तब तक व्यक्ति अन्तर्मुख नहीं हुआ, अभी वह ठीक तरह से साधक भी नहीं बना। साधक को तो भीतर से देखना है और जो भी उसकी दृष्टि अनुभव करने में सहायक होती है, उसका धन्यवाद करना। यहाँ अगर-मगर कुछ नहीं। दुनिया बहती है और भाड़ में जाती है तो जाये। यह उसका अटूट नियम है। (पत्र 333, पृष्ठ 322)

❖ ❖ ❖

भजन करने में मन इधर उधर उड़ता है। साधना के क्रम को ठीक न समझने से ही ऐसा होता है। यदि आपने ठीक समझा होता तो घबराती नहीं। जब जगी हुई शक्ति हृदय से नीचे के केन्द्रों में काम करती हो तो मन चंचल हो उठता है। ऐसा लगता है कि कुछ हो ही नहीं रहा। बेकार में समय खराब हो रहा है, परन्तु ऐसा नहीं होता। वह शक्ति जो हमारे भीतर क्रिया करती है और सभी अनुभूतियों का कारण है, जो हमें निर्मल करती जाती है, वह तो अपना काम कर ही रही है। वह तो भगवान ही है साक्षात् जिसने हमारी नौका को किनारे लगाने का जिम्मा अपने ऊपर ले रखा है। जो हमारे भीतर होता है वह हमारे किये से नहीं, उसी के किये से होता है। घबराहट की आवश्यकता नहीं। धैर्य से अपना नियम निभाती जाइयेगा। विश्वास रखियेगा कि यह मन उचाट होना भी उसी की लीला और कृपा का फल है। (पत्र 336, पृष्ठ 322-324)

❖ ❖ ❖

साधन तथा सतसंग जितना करेंगे, उतना ही तो लाभ होगा। बिना गुड़ के तो मीठा होना कठिन है। उत्साहपूर्वक साधना करियेगा।

(पत्र 336, पृष्ठ 324)

❖ ❖ ❖

व्यवहार का स्वर्णसूत्र है -

Yield in Things which do not matter,
but never in things which do matter.

जो जीवन के सार से, जीवन के मूल्यों से सम्बन्ध रखती है वहाँ

तो झुकना नहीं होगा, परन्तु और जगह खुशी खुशी झुकना होगा। परन्तु जहाँ नहीं झुकना वहाँ भी शील का परित्याग न होना चाहिये, विनय का अभाव न होना चाहिये। (पत्र 339, पृष्ठ 326)

❖ ❖ ❖

वैसे यह सामान्य नियम है कि हमारी विशुद्ध प्रीति, सेवा, मधुरता तथा आत्म-त्याग की भावना दूसरों को मोह सकती है। यदि हम में कुछ है तो हमारा रास्ता लोग स्वयं साफ करते चले जायेंगे। और हमारे लिये तो यह सभी साधना होगी ही। (पत्र 339, पृष्ठ 326)

❖ ❖ ❖

प्यार कर सकना एक सौभाग्य है। सेवा कर सकना प्यार से यह इससे भी बड़ा सौभाग्य है। (पत्र 339, पृष्ठ 326)

❖ ❖ ❖

भीतर-बाहर पूरी तरह से प्रभु के सामने खुले रहने में बड़ा ही मज़ा है, तभी व्यक्ति वास्तव में सरल हो सकता है और तभी निःसंकोच पूरी तरह से। फिर वह झट से दूसरों को प्रभावित भी करता है, बिना चेष्टा के ही। (पत्र 340, पृष्ठ 327)

❖ ❖ ❖

प्रभु चिन्तन में आनन्द है, प्रभु कीर्तन में भी अपना ही आनन्द है। प्राण तरंग का आश्रय लेकर व्यक्ति आकाश में उड़ने लगता है और कभी विचित्र गहराई में बैठ जाता है, दोनों ही स्थितियों में मज़ा है।

(पत्र 340, पृष्ठ 327)

❖ ❖ ❖

साधक को अपना दृष्टिकोण स्थिर तथा स्पष्ट रखना अत्यावश्यक होता है। **'जीना उसके लिये, भोग के लिये नहीं, ऐहिक सुख कीर्ति के लिये नहीं, केवल मात्र प्रभु के लिये।'** यदि दृष्टिकोण बना रहे, और तिस पर मन, बुद्धि अथवा प्राण बगावत करें तो घबराना न चाहिये। उनकी बगावत बहुत देर चल न पायेगी। उन्हें हमारे रास्ते पर आना ही होगा।

(पत्र 341, पृष्ठ 328)

❖ ❖ ❖

दृढ़ मति, आत्मविश्वास और यथासम्भव भीतर प्रभु से युक्त रहने

की चेष्टा उस संस्कार को क्षीण कर देती है। (पत्र 341, पृष्ठ 328)

❖ ❖ ❖

संस्कारों की आँधियाँ आती हैं और बीत जाती हैं। प्रत्येक आँधी के बाद वातावरण अधिक साफ हो जाता है। व्यक्ति की मति अधिक निर्मल हो जाती है। प्रभु से अधिक समीपता प्रतीत होती है। इन सभी आँधियों में भी उस मंगलमयी माँ का वरद-हस्त हमारे सिर पर रहता ही है। हम उसे भूल जाते हैं, वह नहीं भूलती। (पत्र 341, पृष्ठ 328)

❖ ❖ ❖

भीतर के तनाव को दूर कर दीजियेगा। सभी से मिलने में एक सहज सरल भाव रहे। दूसरे का भय, अथवा अपने भीतर के विकार का भय तनाव को पैदा करता है। (पत्र 341, पृष्ठ 328-329)

❖ ❖ ❖

प्रत्येक व्यक्ति में बल तथा अबल रहता है। कई कार्यो के लिये वह समर्थ होता है और किन्हीं के लिये असमर्थ। एक रास्ता तो है अपने पर निर्भर रहने का। बल को बढ़ाने के लिए भरसक यत्न करने का। दूसरा है बलाबल सहित उसी के हो जाने का - ''जैसे भी हैं तुम्हारे, दया करो हे दयालु भगवान''। यदि सचमुच हम अपनी सयानप को छोड़कर उसका हो सकें तो अपनी निर्बलता हमें परेशान नहीं करती। महत्वाकांक्षा हमें व्याकुल नहीं करती। हमारा सिर उसकी इच्छा के आगे झुका रहता है। जैसे रखे, जहाँ रखे, उसी में सन्तोष होता है - प्रसन्नता होती है। और उसकी कृपा धीरे-धीरे हमें संवारती चली जाती है। हमारे विकार दूर होते जाते हैं। हम उसके अधिक निकट समीप होने लगते हैं। यह भक्तों का, भावना वालों का रास्ता है। समर्पण का योग है।

(पत्र 343, पृष्ठ 330)

❖ ❖ ❖

अपने को बदलना, ईंट-ईंट करके प्रासाद का निर्माण करना है। लकीर-लकीर खींचकर, एक बड़ी तस्वीर बनाना है। एक-एक संस्कार को ढालना है। धीरे-धीरे पुराना छिपता जायेगा, नया सामने आता जायेगा।

(पत्र 343, पृष्ठ 331)

❖ ❖ ❖

एक ही आश्रय है – भगवान। वह आश्रय सदा रहने वाला है। कोई भी उसे छीन नहीं सकता। उसके चरणों में प्रीति व्यक्ति को स्वत: उठाती जाती है। समर्पण की भावना तो प्राणी को धीरे-धीरे नया कर देती है। यदि वह प्रभु के पथ पर चलने लगे तो उसे उसकी शक्ति नूतन करती जाती है। सभी कुछ जो अवांछनीय है। पीछे रह जाता है। अच्छाई आती जाती है। (पत्र 343, पृष्ठ 331)

❖ ❖ ❖

आपको ध्यान के लिए सजीव प्रतिमा की आवश्यकता है। यदि आपको कोई ऐसी दिखाई पड़ती है तो उसे ही प्रभु का रूप मानकर चिन्तन करियेगा। न दिखाई पड़े तो भीतर ही निर्माण करियेगा। जैसे भी सधे उसका चिन्तन करते हुए साथ में स्मरण करें। **प्रभु हमको जैसे भी हम हैं स्वीकार करने को तैय्यार हैं, निश्चय जानिये।** (पत्र 343, पृष्ठ 332)

❖ ❖ ❖

वही सत्संग करणीय है जिससे अपनी निष्ठा दृढ़ हो-जिससे अपना विश्वास डिगे अथवा भ्रम की सम्भावना हो उससे दूर रहना ही अच्छा है। रास्ते अनेक हैं, परन्तु आगे बढ़ने के लिये तो अनन्यभाव से एक पकड़ना ही होता है। (पत्र 344, पृष्ठ 333)

❖ ❖ ❖

कामकाज करते हुए भीतर सन्तुलन बनाये रखना बड़ी बात होती है। यदि उसकी याद रह सके, हमारी सारी चेष्टाओं के पीछे प्रभु का भान हो कि 'यह सब उसी के लिये उसकी आशा से', तब यह आसान होता है, परन्तु ऐसी बात बनाने के लिये भी चेष्टा आवश्यक है। कुछ स्वाध्याय, कुछ मनन नियमित रूप से हो और कुछ प्रभु का नाम स्मरण हो, कुछ उसके आगे दिल खोलने का अभ्यास किया जाये, पुकारा जाये तब ही ऐसा हो सकता है। (पत्र 347, पृष्ठ 335)

❖ ❖ ❖

यदि हमने अपने को उसके हाथों में सौंपा है। और उसे पुकारा है कि करवा जो तू चाहे, कर अथवा करवा, केवल मात्र तेरी ही इच्छा पूरी हो, मेरी नहीं मैं कुछ नहीं चाहता, तो हम सिवाय उसकी चाह के और कुछ कर ही नहीं पायेंगे। (पत्र 348, पृष्ठ 336)

❖ ❖ ❖

श्रद्धा-विश्वास के द्वारा तो पत्थरों से भी कामनायें पूर्ण हो जाती हैं।
(पत्र 351, पृष्ठ 339)

❖ ❖ ❖

शान्ति का उपाय है प्रभु चरणों में विश्वास और निर्भरता। जो होगा सो उसकी अनुमति से होगा और जो होगा सो हमारे कल्याण के लिए होगा। इस बात का दृढ़ निश्चय रहना चाहिए। वह सभी समस्याओं को सुलझा देगा। घबराने की आवश्यकता नहीं। वह सुलझायेगा अपनी समझ के अनुसार जो अलौकिक है, वह हमारी समझ से न्यारी हो सकती है, परन्तु होगी हमारे लिये परम कल्याणकारी। यह भी हो सकता है कि हमें इस समय उसकी विशेषता समझ में न आये। (पत्र 353, पृष्ठ 340)

❖ ❖ ❖

गीता की देन है प्रवृत्ति में निवृत्ति की स्थापना। यदि यह नहीं है, तो गीता कुछ भी बात नहीं सिखाती है। प्रवृत्ति का निषेध कदापि नहीं करती है गीता। अन्यथा भगवान अर्जुन को लड़ने को क्यों प्रेरित करते? बस प्रकृति में से अहं को निकालना है। प्रकृति को प्रभु से युक्त करना है। इसका उपाय है प्रवृति का समर्पण। ऐसा करने से अहं स्वतः क्षीण होता चला जाता है। (पत्र 355, पृष्ठ 343)

❖ ❖ ❖

जो तुम्हें अपना स्वधर्म समझ में आता है उसे ही करो। वह बुरा है इसलिए उसे छोड़ कर दूसरा मत पकड़ो। भीतर से मनोवृत्ति कर्तव्य की बना डालो, और समर्पण कर दो अपने कृत्य को प्रभु के प्रति। यह नैतिकता भी आध्यात्मिकी ही है। (पत्र 355, पृष्ठ 343)

❖ ❖ ❖

बस, उसके आगे झुकना और झुकते चले जाना बाहिर से रगड़ लगे तो झुके, भीतर से घर्षण हो तो झुके। राग द्वेष की झाईं भी दीख जाए तो झुक जाए। अभिमान की गन्ध भी आ जाए तो झुक जाए। झुकना ही अनुपम आनन्द है। इससे सतत संयोग होता है। भीतर निर्मल होता है प्रभु की कृपा प्राप्त होती है। (पत्र 356, पृष्ठ 344-345)

❖ ❖ ❖

अपने जीवन के ढांचे को ऐसा ढालिएगा कि साधना प्रधान हो जाय।

प्रभु से प्रार्थना किया करिएगा कि अपनी सच्ची लगन लगा दें, अपनी सच्ची प्रीति दें। फिर सभी कुछ सुगमता से हो जायेगा।

(पत्र 357, पृष्ठ 346)

❖ ❖ ❖

बीज बोकर उसे जमने के लिये समय देना चाहिए, बार-बार उखाड़ कर देखने से तो वह जम नहीं पाता। मन की एकाग्रता के लिए विशेष खींचातानी न करनी चाहिये। हृदय में भावना जाग्रत करने से सुगमता से एकाग्रता हो जाती है। (पत्र 357, पृष्ठ 346)

❖ ❖ ❖

शान्ति तथा स्थिरता हमारी साधना का आधार होना चाहिए। अन्तर उत्तरोत्तर निर्मल होता चला जाय, वासनाएँ शान्त होती जाएँ तो प्रभु की अनुभूति का समय समीप आ रहा है। (पत्र 360, पृष्ठ 348)

❖ ❖ ❖

अन्तरात्मा प्रभु के लिये जीने का निश्चय करे और वह निश्चय सारे व्यक्तित्व के द्वारा अपनाया जाये। उसी का हो जाने के लिये कण कण की पुकार हो। (पत्र 364, पृष्ठ 351)

❖ ❖ ❖

धीरे-धीरे जब यह भीतर अनुभव होता है कि करने कराने वाला-साधना को भी करने कराने वाला - तो कोई दूसरा है, तो समर्पण की आवश्यकता प्रतीत होती है। समर्पण की भावना जगती है। अपने प्रयत्न का स्थान समर्पण और पुकार ले लेते हैं। उस परम सत्ता की प्रतीति आसान हो जाती है।

(पत्र 364, पृष्ठ 352)

❖ ❖ ❖

साधक बालकवत् हो जाता है। उस महा माँ की गोद में सभी चिन्ताएँ और बाधायें बीत जाती हैं। (पत्र 364, पृष्ठ 352)

❖ ❖ ❖

अवतार को मैं अपने तरीके से ही समझता हूँ। वह शक्ति आधार में अवतरित होती है। जब वह विश्व विकास के क्रम में एक नया कदम उठाने के लिये किसी में समुचित वेग से आती है, तब वह अवतार होता है। सामान्यतया अवरोह ही कहा जाता है। (पत्र 364, पृष्ठ 353)

❖ ❖ ❖

भगवान की सत्ता अनुभवगम्य है। इन विषयों में तर्क के द्वारा समझने की चेष्टा करनी नहीं होती है। संशय तो मूल उच्छेदन कर देता है। व्यक्ति आगे बढ़ नहीं पाता। इन विषयों में संशयशील व्यक्ति की स्थिति चौराहे पर खड़े व्यक्ति की सी होती है जो सोचते सोचते ही सारा दिन गँवा देता है। एकदम आगे चलता ही नहीं। विश्वास से किये गये काम में बल होता है। भजन-पूजन तथा कर्म कलाप जो पूजा रूप किया जाता है उसकी तो विश्वास ही जान है। यदि विश्वास है तो उसका प्रभाव होगा। अन्यथा भस्म में हवन करने के समान होगा। (पत्र 365, पृष्ठ 354)

❖ ❖ ❖

रास्ते अनेक हैं। प्रत्येक सन्त अपने ही रास्तों की चर्चा करता है। हमें प्रभु का स्वरूप समझ कर आदर सभी को देना है परन्तु पथ से विचलित नहीं होना है। प्रभु पर विश्वास रखेंगे, तो वह चलायमान नहीं होने देगा।
(पत्र 367, पृष्ठ 356)

❖ ❖ ❖

भगवान ही महाशक्ति है। उनमें अभेद है। इस लोक में माँ और बाप अलग-अलग होते हैं, परन्तु परे वाले जगत में वही माँ है और वही बाप है। उसी का भरण करने वाला भाव और रक्षा करने वाला भाव महाशक्ति है। उस भाव से प्रभु से प्रार्थना करने से वह पुष्ट होता चला जाएगा। स्वरूप के बारे में अधिक समझ साधना करते करते प्रगट होगी।
(पत्र 367, पृष्ठ 356)

❖ ❖ ❖

भगवान् में विश्वास करियेगा खूब-भर पेट। जो परिवर्तन हुआ वह सब आपके किये से तो नहीं हुआ उसकी कृपा से ही हुआ है। मैं तो ऐसा ही समझता हूँ। भगवान हमारे अपने हैं, वह कृपालु हैं, और हम उनके अपने हैं। वह हमारी संभाल करते हैं। (पत्र 369, पृष्ठ 357)

❖ ❖ ❖

अपने हल, अपनी इच्छायें, अपनी रुचियाँ और अपनी स्कीमें- सभी उसी के चरणों में रख दीजिएगा। वह पथ प्रदर्शन करेगा वह रास्ते पर साथ होकर ले चलेगा उठाकर भी और उस पर विश्वास रखिये।
(पत्र 369, पृष्ठ 357)

❖ ❖ ❖

'वह हमारी सुनता है'। यह मत भूलिये। इसीलिये पुकारिये। परन्तु अपनी इच्छाओं को उस पर मत आरोपित करियेगा।

(पत्र 369, पृष्ठ 357)

❖ ❖ ❖

वह मिठास जो लक्ष्य से दूर ले जाये, भले ही कितनी प्यारी क्यों न लगे, वह त्याज्य ही है अत: उसे छोड़ना चाहिए, यहाँ संकल्प की आवश्यकता है। (पत्र 372, पृष्ठ 359)

❖ ❖ ❖

रहा विश्वास, आपको विश्वास करना होगा भगवान की कृपालुता पर और इस बात पर कि आप पर प्रभु ने कृपा की है, आपको विश्वास करना होगा कि वह अपनी अनुभूति अवश्य देगा, वह आपकी सुनता है परन्तु करेगा वही जिसमें आपका हित होगा। (पत्र 372, पृष्ठ 359-360)

❖ ❖ ❖

साधना को जीवन का ध्येय बना लेने से सिद्धि स्वत: हो जाती है। उसके लिये अधीर होना तो अपनी शक्ति का अपव्यय करना है। साधन क्रम में आगे बढ़ने में अपनी लगन तो मुख्य है ही। परन्तु इतना ही काफ़ी नहीं। संस्कारों को भी नि:शेष होना होता है। संस्कार आकर बाधक हो जाया करते हैं। वह क्षीण होने के लिये परिस्थितियाँ, कभी-कभी भोग और क्रियाशीलता की भी माँग किया करते हैं। लगन को खूब संभालते हुये, बढ़ाते हुए भी प्रभु के आगे माथा टेके रखना और उसकी कृपा को मुख्य मानकर धैर्य रखना नितान्त आवश्यक है। (पत्र 374, पृष्ठ 361)

❖ ❖ ❖

बुद्धि को स्थिर रखने की ही चेष्टा करनी चाहिये। अपनी निष्ठा में अनन्यता लाने की चेष्टा चाहिये। अपने समर्पण में व्यापकता का भाव लाने की चेष्टा करनी चाहिए। उतावलापन आये तो उसे भी प्रभु के आगे रख देना है। सन्देह भ्रम जगे तो भी उसी की शरण लेनी है। इस प्रकार से उसी के साथ हर स्थिति में युक्त होने की चेष्टा करनी है।

(पत्र 374, पृष्ठ 361)

❖ ❖ ❖

साधना एक वर्ष में न समाप्त हो जायेगी। सम्भवत: इसी शरीर में

भी समाप्त न हो। सम्भव है कई और जन्म लगें। तो क्या आप इसके लिए इतनी कीमत देने को तैय्यार नहीं हैं? क्या साधना को समाप्त करके कुछ और भी करना है? यदि प्रभु की कृपा पर आश्रित होना है, यदि समर्पण ही मार्ग है तो साधना की समाप्ति की क्या चिन्ता? इसे भी तो उसी के अर्पण करना होगा। वह जो तड़प है यह भी उसी से है और उसी के अर्पण होनी चाहिए। (पत्र 374, पृष्ठ 361-362)

❖ ❖ ❖

समर्पण स्वीकार करना माँ का काम है। वह करेगी निश्चय ही, पुकारना आपका काम है। उसका हो जाने का और सभी कुछ उसी को सौंप देने का निश्चय करना आपका है। यह बौद्धिक निश्चय ही न हो, अन्तरात्मा-भीतर वाला निश्चय करे तभी होता है।(पत्र 374, पृष्ठ 362)

❖ ❖ ❖

राग और द्वेष से परे समभाव में स्थिति आती है। प्रभु के समीप होने से। उसका सुगम उपाय है अपने को पूर्ण रूपेण उसके आगे खोल दें और उसका होने की पुकार करें। समर्पण की भावना अतिरिक्त विकारों का क्रमशः क्षय कर देती है। (पत्र 375, पृष्ठ 363)

❖ ❖ ❖

विकारों को दबाने की चेष्टा विकारों की निवृत्ति नहीं करती। उन्हें दबा ही देती है। महाशक्ति का अवतरण और समर्पण उनकी नितान्त निवृत्ति करता है। वह कार्य हमें नहीं करना होता है। हमें तो उसे बुलाना है और अपने विकृत भाग को उसके आगे बिना तनाव के खोल देना है।

(पत्र 375, पृष्ठ 363)

❖ ❖ ❖

वेदान्त की चर्चा के चक्कर में मत आइयेगा। चर्चा ही चर्चा आप पायेंगे, साधना न पायेंगे। गीता में आपने पढ़ा होगा **'यावनर्थ उदपाने सर्वतः सम्प्लुतेदके'** इत्यादि। वास्तविक ज्ञान तो बुद्धि के परे की चेतना है जो बुद्धि के शान्त होने पर ही जग सकती है। (पत्र 377, पृष्ठ 364)

❖ ❖ ❖

वेदान्त ही बहुत व्यापक शब्द है। उपनिषदों और ब्रह्मसूत्रों द्वारा प्रतिपाद्य विषय वेदान्त है। अद्वैतवाद को भी लोगों ने कई रूपों में समझा है। मैं

तो वादों के पचड़े में पड़ना पसन्द नहीं करता हूँ।

(पत्र 377, पृष्ठ 364-365)

❖ ❖ ❖

पूरा सत्य तो मन वाणी से परे है – वह अनन्त दृष्टिकोणों का परिणाम हो सकता है। अत: असीम बुद्धि के द्वारा अज्ञेय और अज्ञात रहेगा। जो जानता है सो कहता नहीं। बुद्धि जानती नहीं है, जान सकती नहीं। अत: उसकी कही बात की क्या कीमत? उससे आगे बढ़ने में जो सहायता मिले सो ली जाये, परन्तु उसे अगुआ न बना लें। अन्यथा उसकी सीमायें हमारे विकास की सीमायें हो जायेंगी। किसी ने खूब कहा है 'The burden of philosophy is to define the undefinable'. (पत्र 377, पृष्ठ 365)

❖ ❖ ❖

मैं द्वैत को भी सत्य मानता हूँ और अद्वैत को भी। एक के बिना दूसरा निर्बल सा जान पड़ता है। (पत्र 377, पृष्ठ 365)

❖ ❖ ❖

सकारोपासना रामायण का आदि और अन्त है और वह उपासना का विशेष पथ है। **'जन्म कर्म .... दिव्यमेवं यो वेति तत्त्वत:'** यह उसका आधार है। स्त्रियों के सम्बन्ध में जो बात तुलसीदास जी ने कही है मैं तो उनमें उनके व्यक्तित्व की, कवित्त्व की और 'देशकाल' की छाप देखता हूँ। वह हमारे व्यवहार का आदर्श नहीं है। (पत्र 377, पृष्ठ 365-366)

❖ ❖ ❖

भीतर की व्याकुलता मोह की लीला है। उसे रोकने की चेष्टा न करिएगा। हृदय को व्याकुल हो लेने दें जितना होता है, परन्तु ज़रा नज़र रखें और उसे ठीक समझें। हृदय का धर्म है यही। जब तक वह प्रभु के स्पर्श से उज्ज्वल नहीं हो जाता, निर्मल नहीं हो जाता तब तक ऐसा ही किया करता है। थोड़े समय के उपरान्त व्याकुलता से भी उसका पेट भर जायेगा। शान्त हो जायेगा। फिर आप प्रभु की ओर अधिक तेज़ी से बढ़ पाएँगे। (पत्र 378, पृष्ठ 367)

❖ ❖ ❖

सभी काम आदमी सोच समझ कर नहीं करता। रस इस प्रकार से व्यक्ति को बाँध लेता है कि वह खिंचा हुआ चला जाता है, किधर और

क्यों का तो उसे भान उस रस से ज़रा मुक्त होने पर होता है। भीतर का सन्तुलन बनाये रखने की चेष्टा बहुत आवश्यक है।

(पत्र 379, पृष्ठ 367)

❖ ❖ ❖

अन्तरात्मा को प्रभु के आगे झुक जाना होगा सभी विषयों में, भीतर की अनुभूतियों के बारे में भी, मिलन और वियोग के बारे में भी, जिसे साक्षात्कार कहते हैं उसके बारे में और आनन्द के बारे में, सभी कुछ उसी पर निर्भर करता है और उसी के विधान से ऐसा होता है।

(पत्र 379, पृष्ठ 367)

❖ ❖ ❖

हम चाहें तो अन्तरात्मा के झुकने के लिए सामान कर सकते हैं। हम चाहें तो भीतर की व्याकुलता को मोड़ सकते हैं। हम चाहें तो अपने विश्वास और श्रद्धा के द्वारा अपने को इसके लिए तैय्यार कर सकते हैं, यह निश्चित है। (पत्र 379, पृष्ठ 368)

❖ ❖ ❖

भविष्य के बारे में सोचना बेकार है। जब उसके आगे माथा टेका है तो जहाँ जैसा रखेगा खुशी-खुशी रहना होगा। जहाँ हमारे लिए हितकर होगा, जैसा हितकर होगा वैसा ही तो करेगा। चिन्ता क्यों कर हो।

(पत्र 380, पृष्ठ 369)

❖ ❖ ❖

उस दिव्य अवस्था को पहुँचा देना भी उसी का काम है। हम तो उसके प्रति सच्चा प्रेम चाहते हैं। उसका ही हो जाना चाहते हैं, उसमें आपा खो देना चाहते हैं, वह जहाँ रखे जैसा करे। उस प्रकार की दिव्यत्व की इच्छा के मूल में भी तो ''अहं'' है ही। (पत्र 381, पृष्ठ 370)

❖ ❖ ❖

इस जीवन की अपनी समस्यायें हैं वह विषम हैं और जटिल हैं इसमें सन्देह नहीं परन्तु वह जो कुछ व्यक्ति को सिखा सकती हैं सो उसे अन्यत्र सीखना कठिन है उनसे घबराना नहीं होगा। बेसमझ बच्चे सोचा करते हैं कि मास्टर साहब आसान आसान सवाल दें, समझदार तो कठिन समस्याओं का आवाहन करते हैं क्योंकि उन ही से तो बुद्धि कुशाग्र हो

पाती है और समझ भी पनप पाती है। (पत्र 382, पृष्ठ 371)

❖ ❖ ❖

आत्म-कृपा का अर्थ है – अपनी कृपा अर्थात् जो अपने से हो सके, पुरुषार्थ। यदि व्यक्ति स्वयं कुछ करने के लिये तैय्यार न हो, साधन न करे तो उसे कुछ प्राप्त नहीं हो सकता। (पत्र 384, पृष्ठ 372)

❖ ❖ ❖

भीतर स्थिरता की याचना करें तो वह देते ही हैं। इसमें सन्देह नहीं है। (पत्र 384, पृष्ठ 372)

❖ ❖ ❖

निष्ठा बनाई जाती है। बारम्बार का मनन ही दृष्टिकोण को स्थिर कर पाता है। पहले-पहले तो कई बार व्यक्ति उखड़ जाता है। फिर लौटता है उसी धारणा पर। समय पाकर दृढ़ता आ जाती है। फिर वह भटकता नहीं। समर्पण की धारणा भी ऐसे ही बनेगी। (पत्र 387, पृष्ठ 376)

❖ ❖ ❖

आपको प्रेम और आसक्ति का अन्तर कुछ समझ में आया होगा। आसक्ति माँग करती है – लोग मुझ पर भी अधिकार समझें, मैं जैसे उन पर समझता हूँ। **प्रेम माँग करना जानता ही नहीं। वह देना ही जानता है और न मिलने पर भी देता ही जाता है।** प्रेम में पीछे हटने का तो नाम नहीं होता। हाँ! आँखें खोल कर चलता है प्रेम! दूसरे के भीतर की गतियों को जानता है। हमारी कौन-सी बात दूसरों को बुरी लगती है, यह जानकर अपने व्यवहार को ठीक करता है। उपेक्षा अथवा अनुदारता प्रेम में सम्भव नहीं। न ही कोई नीची कोटि की वासना के लिये गुंजाइश है। (पत्र 387, पृष्ठ 376)

❖ ❖ ❖

हर बात में, हर नज़र में, हर सोच में भगवान ही पहले आयें, यह ज़रूरी है, इसमें क्या सन्देह? उसकी याद में, उसमें हम ओत प्रोत हुए देखें, सुनें और बर्तें। (पत्र 387, पृष्ठ 376-377)

❖ ❖ ❖

पुकार में अहं की तृप्ति की भावना रहती ही है प्रारम्भ में, परन्तु माँ उसे स्वयं दूर कर देती है। उसके नीचे लगी हुई सूक्ष्म वासनाओं को

स्वयं धो देती है। आप वह भजन तो जानते होंगे – 'दे माँ निज चरणों का प्यार।' (पत्र 387, पृष्ठ 377)

❖ ❖ ❖

'माँ से माँगना, माँगना नहीं होता। माँ से हम अलग थोड़ा होते हैं। परन्तु जैसे ही धीरे धीरे माँ के सर्वज्ञ भाव का हमारे हित को भली प्रकार जानने और करने का भान होता है तो माँग और ही रूप ले लेती है। माँग में भी बैठी माँ स्वयं माँगती दिखाई देती है। व्यक्ति लौट फिर कर उस माँग को उसी के आगे रख देता है – तेरी देन तेरी भेंट चढ़ाऊँ' और कहता है – तेरी इच्छा पूर्ण हो माँ! (पत्र 388, पृष्ठ 378)

❖ ❖ ❖

मेरी पुस्तकें कठिन हैं, इसमें सन्देह नहीं। परन्तु एक बार ही में तो वह समझने की नहीं हैं। पहले तो खाली पढ़ ही जाना होता है। फिर दुबारा ज़रा विचारपूर्वक पढ़ना चाहिए और धीरे-धीरे।

(पत्र 391, पृष्ठ 383)

❖ ❖ ❖

विधाता के विधान के आगे माथा टेकना ही होता है। जो ख़ुशी-ख़ुशी टेकता है, वह परेशानी से बच जाता है। बच्चे पैदा होते हैं, और चले जाते हैं, परन्तु आदमी और पैदा करने से अघाता नहीं। मैं तो समझता हूँ आत्मसंयम का जीवन आपके और आपकी पत्नी के लिए सर्वथा हितकर होगा। स्वास्थ्य भी सभी प्रकार से अच्छा रहेगा। परन्तु वैसा जीवन बिना प्रभु की लगन के, बिना तत्परतापूर्वक साधन किये सम्भव नहीं होता। व्रत लेने तो बेकार होते हैं। (पत्र 395, पृष्ठ 385)

❖ ❖ ❖

परेशानी की अवस्था में प्रभु के सम्मुख हो जाइयेगा, उसकी शरण हो जाइयेगा। परेशानी को भी उसकी देन और आपके लिये अवश्य ही कल्याणकर है, ऐसा समझियेगा। भला उसका विधान अमंगलमय कैसे हो सकता है? प्रभु हमारे समीप ही तो रहता है। हमसे जो घटता है सो उसकी अनुमति से घटता है और हमारे लिए कल्याणकर होता है।

(पत्र 397, पृष्ठ 386)

❖ ❖ ❖

माँ की लीला विचित्र है। उसकी कृपा अपार है। अनन्त है उसकी शक्ति और अनन्त है उसकी सूझ। भीतर के तारों को किस योग्यता से, किस दृढ़ता से, किस कल्पनातीत कोमलता से सुलझाती चली जा रही है। अधूरा कुछ छोड़ती नहीं। कहीं ऊबती नहीं। कहीं किसी कार्य में ग्लानि नहीं। कहीं अधीरता नहीं। भला ऐसी माँ के हाथों में पड़कर भी व्यक्ति सोच करे तो कैसा मूर्ख है? वह सभी कुछ करती करवाती चली जा रही है। किधर को ले जायेगी, इसका भी विचार करने की गुन्जाइश नहीं।

(पत्र 398, पृष्ठ 387-388)

❖ ❖ ❖

माँ की लीला समझ में नहीं आती, विस्मय क्या है। अभी विश्वास करो, श्रद्धा करो। लीला माँ की है और मंगलमयी है।

(पत्र 399, पृष्ठ 388)

❖ ❖ ❖

यदि कोई कुछ कहता है तो कहने दो। उससे बनने बिगड़ने का तो है नहीं। पर अपने बारे में ग़लतफहमी न रखनी चाहिये। जब तक व्यक्ति का पूर्णरूपेण अन्तर शोधन नहीं हो जाता, होता वह बदमाश ही है। शरीर में न सही मन में ही सही-संकल्प के जगत में ही सही।

(पत्र 399, पृष्ठ 388-389)

❖ ❖ ❖

जब दुनियाँ गाली दे, नाम रखे तो स्थिर रहो, मधुर रहो प्रेम तथा सेवा से भरे रहो। अपनी सफाई देने की चेष्टा भी न करो। सत्य स्वयं प्रगट हो जायेगा। हाँ भीतर झाड़ू ज़रूर दो। घृणा नहीं करियेगा। भीतर भी विरोध न हो गाली देने वालों से। आपका प्रेम जीत जायेगा। यह निश्चित है। और यह भी तो साधना ही है। कैसी सुन्दर सहज साधना है। माँ की कृपा से ही मिलती है। (पत्र 399, पृष्ठ 389)

❖ ❖ ❖

भोजन के बारे में इतना जानता हूँ कि पिछला खाया जब तक पेट से पार न हो जाए और नहीं डालना चाहिये। फलों अथवा चीनी के अतिरिक्त सभी सामान तीन घण्टे तो लेता ही है पेट से पार होने में। उसके बाद उस बेचारे को थोड़ा आराम भी देना चाहिए। (पत्र 399, पृष्ठ 389)

❖ ❖ ❖

अपने हिसाब आप ही चुकाने होंगे। दूसरों के हिसाब चुकाने की फिक्र में पड़ कर अपने भी न चुका पाओगे। दूसरों की दूसरे निपटायेंगे। कोई सहायता माँगे तो सहायता करें परन्तु व्यर्थ में सिर पर बोझा न लाद लें।
(पत्र 400, पृष्ठ 391)

❖ ❖ ❖

जब तक तो माथा उसके आगे नहीं झुका था, जब तक पा जाने की लालसा थी, जान लेने का चाव था परेशानी हुआ करती थी। जब माथा झुकने लगा समझ आने लगी कि वह दयामयी तो अनवरत रात्रि और दिवस हमारे भीतर साधना कर रही है, वह सुधार रही है, गिरने लायक को गिरा रही है और बनाने लायक को बना रही है, हम तो उसी के हाथों खेलते हैं, उसी की गोद में निवास करते हैं, फिर सभी जिज्ञासाएँ, सभी लालसाएँ शान्त होती गईं। आत्मदर्शन का अर्थ बाहर ही नहीं भीतर के जगत में समझ आने लगा। भीतर उस महामाया की मंगलमयी क्रिया वेग पकड़ती गई। भीतर के बन्धन ढीले होते गए। निश्चिन्तता होती गई। आनन्द होता गया। सभी उत्सुकताएँ हमेशा के लिए शान्त हो गईं। वियोग की कल्पना ही बीत गई। (पत्र 401, पृष्ठ 392-393)

❖ ❖ ❖

भक्त अपनी सभी जिज्ञासाओं को, लालसाओं को माँ के चरणों में उड़ेल देता है और हो जाना चाहता है उसी का ही। रास्ता तो एक ही है। वह देहली लांघे बिना भीतर प्रवेश कैसे? (पत्र 401, पृष्ठ 393)

❖ ❖ ❖

उस दयामयी के चरणों को पकड़ियेगा। वह आपके लिए जब जैसी सहायता की आवश्यकता होगी भेजेगी। जिस व्यक्ति की सहायता चाहिए होगी उसे भेज देगी। (पत्र 401, पृष्ठ 394)

❖ ❖ ❖

उधर से कमी कभी नहीं होती। व्यक्ति अपनी अवस्था ग़लत आंकता है जो उसे लगता है कि वह कृपा नहीं करती। व्यक्ति नासमझी में सोचता है कि उसका समर्पण स्वीकार नहीं हुआ। वह तो बाँहें फ़ैलाये खड़ी है आपका सत्कार करने को परन्तु आप तो अपनी बुद्धि की या दिल की तृप्ति चाहती हैं उसके द्वारा। (पत्र 401, पृष्ठ 394)

❖ ❖ ❖

धैर्य धरो, विश्वास करो, चेष्टा करो, संस्कार का क्षय प्रगति के लिये आवश्यक है। दिन बदला करते हैं। भीतर बाहर बदला करते हैं संस्कार के क्षय होते ही। (पत्र 404, पृष्ठ 396)

❖ ❖ ❖

दूसरे शरीर की और भीतर की माँगों को तो वह बहुत अच्छी तरह से जानती है। जितनी समझदार, जितनी होशियार जितनी अथक भाव से कार्य करने वाली माँ है हम उसकी कल्पना भी नहीं कर सकते।

(पत्र 405, पृष्ठ 397)

❖ ❖ ❖

माँ!माँ! इस एकाक्षर में क्या-क्या रहस्य समाया है। कितने जन्मों के अनन्त रहस्यमय माँ माँ ही है। वह क्या नहीं कर सकती! उसके लिए कुछ असम्भव नहीं, कुछ वर्ज्य नही। स्नेह के आगे-विशाल विशुद्ध अनन्त प्रेम के आगे बाढ़ें तो रह ही क्या सकती है। माँ क्या नहीं करती अपने बालक के लिए - जाये के लिए। जितना मैं सोचता हूँ उसकी लीला को उसकी कृपा को उतना ही डूब जाता हूँ। उसके प्रेम में उस दयामयी के अमृत रस में। और जब मैं उसे मूर्तिमान देखता हूँ अपने पास - अपने चारों ओर, जब मैं विचार करता हूँ, किस प्रकार से हाथ और हृदय और मुख बने व्यवहार करते हैं। अनन्त हाथों और मुखों में विलास करती देखता हूँ तो विचित्र गति होती है - गुदगुदी सी हृदय में।(पत्र 405, पृष्ठ 398)

❖ ❖ ❖

ऐसे लगता है माँ ने इस यन्त्र को अपनी सेवा में अधिक योग्य बनाने की ठानी हुई है। रात-दिन इतनी तेजी से ताने बाने बुनती जा रही है गिराने लायक को काली बनी हुई गिरा रही है और ब्रह्माजी बनी हुई सतत नूतन रचना करती चली जा रही है। यह तो उसकी क्रीड़ा का क्षेत्र मात्र बना है। वही सभी कुछ करती है। परवश हूँ - अंगुली तक हिलाना तो उसी से होता है। जहाँ कर्तव्य प्रतीत होता भी है वहाँ भी कोरा बुद्धिगत भ्रम है। वही एकमेव कर्ता हो गयी है। (पत्र 405, पृष्ठ 398)

❖ ❖ ❖

सदैव के लिए निश्चिन्तता तो माँ पर निर्भर रहने में ही है। इसके अतिरिक्त और जो निश्चिन्तता की याचना है वह तो अहं की माँग है।

माँ की गोदी में तो मैला कुचैला बालक भी निश्चिन्त ही है। जब अपने को **उसके हाथों में ही सौंपना है** तो फिर चिन्ता हो तो उसे। हमें क्या चिन्ता? जैसे भी हैं हमें वह अपना लेगी और जैसा चाहेगी कर डालेगी। जो चाहेगी हमसे खेल भी खेला लेगी। (पत्र 406, पृष्ठ 399)

❖ ❖ ❖

आपने 'बहन और मित्र' सम्बोधनों के बारे में पूछा है। मेरी समझ में तो केवल मात्र सम्बोधनों से कुछ नहीं होता। भीतर का भाव ही प्रधान होता है। **परस्पर व्यवहार में सहज सरल तो होना ही चाहिए परन्तु ऐसा भी होना समुचित नहीं कि समाज को आपत्ति हो।**

(पत्र 406, पृष्ठ 399)

❖ ❖ ❖

माता शब्द में मुझे तो बन्धन नहीं, एक अद्‌भुत दिव्य सरसता दीखती है। मैं तो किसी को माँ कह पाता हूँ मेरे लिए साक्षात् वह महामाता ही बन जाती है। इतनी मधुरता तथा बल है इस छोटे से शब्द में। मित्रता में एक बराबरी होती है। झुकने का अवसर नहीं होता। माँ में यह अवसर मिलता है। जितना आदमी झुकता है। उतना ही भर जाता है उस महा माँ के अमूल्य प्रसाद से। (पत्र 406, पृष्ठ 399)

❖ ❖ ❖

प्राण जीवनी-शक्ति है और हमारे शरीर की उत्पत्ति तथा रक्षा से सम्बन्ध रखने वाली क्रियायें प्राणगत क्रियायें हैं। कामशक्ति का मूल भी प्राण ही हैं। इन्द्रियों का भी प्राण से ही सम्बन्ध है। मन प्राणगत संस्कारों पर भावना की पुट लगाता है। Astral जगत मन का क्षेत्र है।(पत्र 406, पृष्ठ 400)

❖ ❖ ❖

काम विकारों का मूल प्राण में होता है। वह मनोमय से रंजित होकर बुद्धि जगत में प्रगट होते हैं। (पत्र 406, पृष्ठ 400)

❖ ❖ ❖

जो इन्द्रियों से सीधे सम्बद्ध आवेग हैं वह प्राणमय जगत के कहलाते हैं, जैसे काम। जो उनके सम्बन्ध में **नहीं हैं वह मनोमय जगत के, लोभ, द्वेष, क्रोध।** (पत्र 406, पृष्ठ 400)

❖ ❖ ❖

निम्न मनस् में तो नीची कोटि के अन्य ही दु:ख का कारण होने वाले और विकास में आगे चलकर बाधक होने वाले भाव होते हैं – राग, द्वेष, क्रोध। मनोमय के ऊँचे स्तर में इनके प्रतिकूल भाव रहते हैं। जैसे प्रेम, सहानुभूति। (पत्र 406, पृष्ठ 400)

❖ ❖ ❖

कोई हम से प्रसन्न रहे, यह हमीं पर थोड़ा निर्भर करता है। देव भी अपना खेल खेलता है। मस्त रहिये-प्रभु पर निर्भर रहिये। भीतर निर्मल करती जाइयेगा। बाहर की समस्यायें भी उसी से ही स्वीकार करिये और सोच विचार उड़ेल दीजिये उसके आगे। (पत्र 409, पृष्ठ 404)

❖ ❖ ❖

संस्कारों का क्षय तो निश्चित ही है। परन्तु उसके लिये किसी विशेष संस्कार के क्षय के लिये पुकार कर हम एक बाधा उपस्थित कर देते हैं जो भीतर तनाव का कारण होती है। वह हमारे माथे को भी झुकने नहीं देती प्रभु के आगे भली प्रकार से और न ही उस कृपामयी माँ की लीला का रहस्य ही दीख पाता है। हमें तो सभी कुछ जीवन की सभी गतियाँ क्या सुखमय अथवा दु:खमय हों उसी से स्वीकार करनी सीखनी है। वह सभी हमारे मंगल के लिये माँ का विधान है यह विश्वास रखते हुए। इसके लिए निष्ठा चाहिये, दृढ़ता चाहिये, धैर्य चाहिये। वह सभी प्राप्त होता है हम तैय्यार तो हो जायें इस दृष्टिकोण के लिए।

(पत्र 411, पृष्ठ 406)

❖ ❖ ❖

मनुष्य के हाथ में तो कुछ भी नहीं है। उस प्रभु के हाथ में ही है। वह कृपा करता है तो ठीक संयोग भी हो जाते हैं और बुद्धि भी बदल जाती है। सभी आनन्द ही आनन्द हो जाता है। जब तक उसकी कृपा का योग नहीं होता तो कुछ भी नहीं हो पाता। किस बात के बारे में मनुष्य सोचे कि मैंने किया है। वास्तव में करता वही है। आज हम जिस स्थिति में हैं तो उसकी कृपा से ही यदि किसी का तनिक भी हित हो जाता है तो उसके किये से। बस उसकी शरण ही रहना चाहिए। वही है करने कराने वाला। चराचर का एकमात्र स्वामी, सर्वनियन्ता।

(पत्र 414, पृष्ठ 409)

❖ ❖ ❖

स्वधर्म का क्षेत्र जानकर, पहचान कर उस पर भावना से चलने में ही समाज का कल्याण है। इसी में व्यक्ति का कल्याण है।

(पत्र 416, पृष्ठ 410)

❖ ❖ ❖

माता-पिता से अपना सम्बन्ध अच्छा बनाये रखना आवश्यक ही है। हमें जो बातें बुरी लग जाती हैं, इसका कारण हमारे भीतर छिपा अहंकार और क्रोध होता है। सोचने लगते हैं ऐसा कहा क्यों? जो जैसे संस्कार रखता है वैसा सोचता तथा कहता है। हमारा दिमाग थोड़ा ही उसने माँग रखा है जो हमारी तरह से सोचे। माता-पिता तो माता-पिता ही हैं। अपनी ओर से तो आपका हित ही सोचेंगे। **सोचने में ग़लती हो सकती है। भावना में ग़लती नहीं होती।** उनके कहे को उदारता से लेना चाहिये। फिर बुरा नहीं लगेगा। **भगवान के रास्ते पर चलने वालों को तो कुछ भी कभी भी बुरा लगना ही न चाहिये।** यह तो कमज़ोरी ही है जो बुरा लगता है। भजन करने से, प्रभु के आगे झुक जाने से अहम् क्षीण होता जाता है और फिर बुरा भी कम लगता है। गुस्सा होने से व्यक्ति स्वयं जलता है शान्ति आनी ही चाहिये। माता-पिता अपनी समझ के अनुसार ही कहते हैं। उन्हें कहने का भी अधिकार है ही। (पत्र 431, पृष्ठ 427)

❖ ❖ ❖

हमें अपने को प्यार के द्वारा दूसरे से इतना मिला देना है - आपा इतना मिटा देना है कि दूसरे को हमारा बोझा ही प्रतीत न हो सके। और दूसरों के पीछे चलना सीखना है। लोग धकेल कर आगे कर दें तो भी याद रहे कि मेरा स्थान तो सभी के चरणों में है। और वहाँ से छुट्टी पाते ही फिर आदमी उसी स्थान पर पहुँच जाए। (पत्र 434, पृष्ठ 430)

❖ ❖ ❖

वास्तव में, ऊँची और अन्तिम बात तो यह है कि आगे और पीछे की प्रतीति न रहे - अन्तर न रहे। व्यक्ति में समता आ जाए। अपने को न छोटा ही समझे न बड़ा ही समझ सके। दूसरों से अद्वैत हो जाए पूरा पूरा।

(पत्र 434, पृष्ठ 430)

❖ ❖ ❖

रास्ता है और अधिक प्यार। दूसरों में और अधिक रुचि। अपने को

दूसरों में अधिक खो देना। दूसरों में प्रभु को ढूँढने की चेष्टा में रत रहना। हमारा व्यवहार या लक्ष्य ही ऐसा हो जाए। तब वह साधना हो जाता है।

(पत्र 434, पृष्ठ 430)

❖ ❖ ❖

अपने को बदल डालना, यह है हमारा काम। क्रोध न हो, कुढ़न न रहे–प्रेम हो नितान्त प्रेम ही प्रेम। प्रभु के चरणों में रति हो। अपने कर्तव्य का पालन हो, जितना हो सके भजन हो। जो भी सुख दुःखादि सांसारिक दृष्टि से हो वह मालिक की देन करके स्वीकार हो खुशी खुशी। प्रभु की कृपा से हम बदल सकते हैं। उसकी कृपा से अभी बदल सकते हैं। दूसरों की चिन्ता न करके अपने को बदलने की चेष्टा करो। अपने भीतर के विकार निकल जावें, फिर हम दूसरों के विकारों को निकालने में भी सहायक हो पायेंगे। अन्यथा हम भी जहाँ पर हैं वहीं पर रहेंगे और दूसरा भी। सहना सीखो खुशी खुशी, कुढ़न से रहित होकर–प्यार से। फिर वह बदल सकेंगे। प्रभु दयालु हैं। उसकी दयालुता है कि वह अपना मार्ग देकर व्यक्ति को दुःख से ही परे कर देता है। दुःख सुख रहता ही नहीं। फिर कर्म भोगने पड़ें तो क्या और न भोगने पड़ें तो क्या। उसमें परिवर्तन होगा या नहीं होगा यह राम ही जानते हैं। आप इस विषय में सोच सोच कर अपना दिमाग खराब न करें। अपने को निर्मल, उज्ज्वल, प्रेम तथा भक्तिमय बनावें जिससे उनका स्वभाव आपको प्रभावित ही न कर पाए। जब हम रजोगुण को सहन करना सीख जाते हैं तो परेशानी से परे हो जाते हैं। (पत्र 440, पृष्ठ 436)

❖ ❖ ❖

जितना हम अपने और अपनों को उस पर छोड़ सकते हैं उतना ही निश्चिन्त हो जाते हैं और उसके सहारे को अनुभव कर सकते हैं। बस, उससे माँगना भी यही चाहिए कि वह अपनी सच्ची–निष्ठा दे, प्रीति दे अपने चरणों की ओर सदा के लिए अपना कर ले।

(पत्र 443, पृष्ठ 438)

❖ ❖ ❖

जैसे–जैसे समझ पनपती है और दिल में स्थिरता आती है लोगों की बातें बुरी नहीं लगा करतीं। बहुत बार तो हमारे अहंकार को ठेस लगती

है। हमें प्रतीत होता है कि मान हानि हो गई। बातें चुभ जाती हैं। कभी इसके साथ सत्य-असत्य की भावना लगी रहती है। कभी दूसरों से जो हम करते हैं उसमें निराशा होती है। वास्तव में मनुष्य प्राय: अन्धे की तरह व्यवहार करता है। वह दूसरों को समझने की चेष्टा नहीं करता। अपने को ही जानता है और उसी में मस्त रहता है। दूसरे जैसा हमसे व्यवहार करते हैं वैसा क्यों करते हैं? व्यवहार में सबसे मुख्य यही प्रश्न होना चाहिए। लोग जैसे हैं और जैसे उनके हमारे विषय में अनुभव हैं और जैसी उनकी तात्कालिक परिस्थिति है – वैसा हमसे बर्तते हैं। क्रोधी हमसे क्रोध करता है तो क्या विस्मय। दु:खी होने का भी क्या कारण? हमें कोई जादू आता हो क्रोधी के स्वभाव को बदलने का तो उसे बरतें अन्यथा सारे जीवन में तो ये सभी बातें मिलेंगी। यदि किसी मनुष्य को हमारे न चाहने पर हमारे हाथों नुकसान हुआ हो तो उसके विचार हमारे प्रति खराब हो जाने स्वाभाविक हैं। यदि ऐसा मनुष्य हमसे टेढ़ा व्यवहार करे तो कोई विस्मय की बात नहीं। कोई पुरानी कर्मगति ही ज़िम्मेदार है। शान्ति पूर्वक रहना चाहिए। यदि हम अपनी ओर से ठीक व्यवहार करते जायेंगे तो सम्भवत: किसी दिन उसकी हमारे प्रति धारणा बदल जायेगी।

(पत्र 444, पृष्ठ 438-339)

❖ ❖ ❖

मनुष्य में भलाई भी रहती है और बुराई भी। वही व्यक्ति जो हमसे ठीक नहीं बरतता न जाने किसी दूसरे से ऐसा अच्छा बरतता है जैसा हम भी किसी से न बरतते हों। किसी के दुर्व्यवहार के कारण किसी को बुरा समझकर घृणा करने लग जाना भी ग़लत बात है। घृणा तो सदैव सर्वथा दु:ख का कारण होती है। लोग जो व्यवहार में ग़लतियाँ करते हैं उसके पीछे लाचारियाँ रहती हैं। वह अपने को हानि पहुँचाते हैं। मानसिक रोगों से वह स्वयं परेशान होते हैं। वह तो दया के पात्र हैं। यदि हमसे हो सके तो सहायता करें उनकी, स्वास्थ्य लाभ करने में। बुरा मानकर तो हम स्वयं रोगी हो जाते हैं। (पत्र 444, पृष्ठ 439)

❖ ❖ ❖

वैसे शान्ति का सुगम उपाय है प्रभु के नाम का स्मरण – उससे शान्ति की याचना करनी। (पत्र 443, पृष्ठ 439)

❖ ❖ ❖

भीतर हमेशा एक सी अवस्था तो कुछ आगे चलकर आती है। शक्ति की गति के अनुसार कभी आनन्द होता है, कभी शान्ति होती है और कभी सुनसान होता है। सभी अवस्थायें उस मंगलमयी, माँ के किये से होती हैं। यही ध्रुव सत्य है। किसी भी अवस्था में ऐसा सोचने से हम उसके और निकट हो जाते हैं और उसकी कृपा अधिक प्राप्त होती है।
(पत्र 446, पृष्ठ 441)

❖ ❖ ❖

सेवा केवल हाथों से ही नहीं होती वाणी तथा मन से भी होती है। दूसरों के दु:ख दूर करने की चेष्टा सेवा ही तो है। दुखियों से प्यार करके, भली बातें बता कर, उनके लिये मंगल कामना करके हम सेवा कर सकते हैं। (पत्र 446, पृष्ठ 441)

❖ ❖ ❖

हमारा प्यार, हमारी वाणी की मधुरता और हृदय की कोमलता दूसरों को हमारी ओर आकृष्ट कर लेती है। दूसरों को प्रभावित करने के लिए यह जादू। बच्चों को कभी-कभी प्यार करना चाहिए, प्यार के खातिर ही, उनसे खेल भी करना चाहिए। उनकी प्रशंसा भी करनी चाहिए। ग़लत बातों के बारे में उनके आगे झुकना कभी नहीं चाहिए। और कई बातों की उपेक्षा भी करनी चाहिए। समझ आने पर सुधर जाती हैं। इस तरह से धीरे-धीरे रास्ता निकालना होगा। बुरा भला कहकर चलाने से तो बच्चे गधे बन जाते हैं। (पत्र 448, पृष्ठ 442)

❖ ❖ ❖

माँ निर्मल करती है। कपड़े को कभी पटकना पड़ता है, बदन को मलना पड़ता है। ऐसा ही खेल लगता है। जो जितनी जल्दी घुलना चाहता है उतना ही पिसता भी है। (पत्र 449, पृष्ठ 443)

❖ ❖ ❖

जीवन में मनुष्यों को सभी प्रकार के व्यक्तियों से बरतना होता है। कई प्रकार की बातें हमारी विचारधारा की निर्णायक हो जाती हैं। न तो दूसरे ही सर्वज्ञ अथवा स्थितप्रज्ञ हैं और न हम ही हैं। हम भी ग़लतियाँ करते हैं, जाने अनजाने और दूसरे भी करते हैं। ग़लती करना तो मनुष्य मात्र के लिये स्वाभाविक है। (पत्र 452, पृष्ठ 446)

❖ ❖ ❖

कौन दावा कर सकता है कि वह ग़लती नहीं करता? बहुत बार तो हमारी सुप्त चेतना के प्रभाव अनजाने ही हमें बहा ले जाते हैं। अपनी ओर से हम जागरूक रहने की चेष्टा कर सकते हैं। सो उतने से सन्तोष करना चाहिये। हम अपने और दूसरों के विषय में एक ऊँची काल्पनिक धारणा बना लेते हैं। उसके परिणामस्वरूप हमें आघात होता है या निराशा होती है। जैसे-जैसे हम साधना में अग्रसर होते हैं हम अपने भीतर छिपे विकारों को जान पाते हैं, फिर नम्रता आती है। हम खाली हो जाते हैं ग्रहण करने के लिये। फिर मान हानि का प्रश्न ही नहीं रहता। दूसरे के द्वारा की गई निन्दा को हम सच मानने के लिये तैय्यार हो जाते हैं। हम उसके आभारी होते हैं क्योंकि वह हमें भीतर झाँकने के लिये अवसर तो देता है। वह हमारी गन्दगी धोने की चेष्टा करता है।

(पत्र 452, पृष्ठ 446)

❖ ❖ ❖

बढ़ी हुई लोकेष्णा ही तो परेशानी पैदा करती है। **क्यों न झुका दें इस मस्तक को प्रभु के चरणों में? जहाँ रखे, जैसे रखे, उसी में खुश रहने के लिये क्यों न उद्यत हो जायें?** आखिर अहं की निवृत्ति तो इसी प्रकार के आघातों द्वारा होती है। जितना अहंकार होता है उतना ही बुरा लगता है। ऐसे आघातों से व्यक्ति अहं को जान जाता है और प्रभु के आगे मत्था टेकने के लिये तैय्यार हो जाता है।(पत्र 452, पृष्ठ 446)

❖ ❖ ❖

"तृणादपि सुनीचेत तरोखि सहिष्णुना।
अमानिना मानदेव कीर्तनीयः सदा हरिः॥"

यह आदर्श है। **मानहानि प्रभु कृपा की सूचक है। होने वाले परिशोधन का पूर्व रूप है।**

अधिक से अधिक क्या हो सकता है। जो हो सकता है हो ले। जो होगा सो प्रभु की अनुमति से ही होगा। जो होगा, इसलिए आपके परम कल्याण के लिये ही होगा। यदि मानहानि का अनुभव आपकी अग्रगति के लिए आवश्यक है तो यह भी हो ले। आखिर उसका साथ तो है ही।

(पत्र 452, पृष्ठ 447)

❖ ❖ ❖

प्यार का ही तो भैय्या यह रास्ता है जो हमें मिला है। ऐसा ही दिन प्रतिदिन समझ में आता है। निस्वार्थ पवित्र प्रेम कितना जाग्रत कर सकता है। कितनी जल्दी कटते हैं प्रबल प्रेम से भीतर के बन्धन; यह सभी लीला देखकर तो विस्मय होता है। (पत्र 453, पृष्ठ 447)

❖ ❖ ❖

प्यार देते समय और लेते समय माँ का स्मरण तो स्वाभाविक ही है। उसी का प्यार है जो दिया और लिया जाता है। वास्तव में यह द्विविध खेल ही उसी का है। **मानवी खेल तो यह है नहीं।** जादू का तमाशा है। (पत्र 453, पृष्ठ 448)

❖ ❖ ❖

संयोग और वियोग दोनों ही तो ज़रूरी होते हैं भैय्या, प्रेम की लीला में। वियोग प्रेम को दृढ़ करता है। संयोग जाग्रत कर देता है। फिर वियोग में कभी-कभी बाढ़ आ जाती है। (पत्र 453, पृष्ठ 448)

❖ ❖ ❖

दु:ख क्या है? पापों का फल तो है पर **केवल** इतना ही नहीं। वह हमारे विकास की माँग भी तो है। (पत्र 453, पृष्ठ 448)

❖ ❖ ❖

आध्यात्मिक जगत में तो मानापमान कुछ होता नहीं। जिससे मान की भावना मरे वह और भी अच्छा होता है। जिससे क्रोध जीता जा सके वह तो और भी अच्छा होता है सीखो इन पाठों को। जो आप दुख का कारण करके जानती हैं वह कल्पना का कारण हो जायेगा। हिम्मत करो। दृढ़ता दिखाओ जरा ज़ोर से पुकारो उस मालिक को। (पत्र 454, पृष्ठ 449)

❖ ❖ ❖

सहारा लो प्रभु का। उससे प्यार करो। खूब प्यार करो। उसे भीतर बिठा लो। उसकी याद में रहो। उसी के लिए काम करो। उसी के लिए पति की सेवा करो। उसी के गुनगान करो। वह दया करता है। वह अपना प्रेम दान दे सकता है। यही उसकी बड़ी दया है। और कुछ मत माँगो। जैसे रखे, जहाँ रखे, उसके लिए तैयार रहो। यह है कल्याण का रास्ता। याद रखना। (पत्र 454, पृष्ठ 449-450)

❖ ❖ ❖

भगवान की कृपा हमारे सभी मैले संस्कारों को धो सकती है और हमें निर्मल कर देती है। प्रभु चरण का ही एक मात्र आश्रय लेना चाहिए वही बेड़ा पार लगा सकता है। (पत्र 455, पृष्ठ 450)

❖ ❖ ❖

हमारे विचार का भी तो हमारे स्वास्थ्य पर बड़ा असर होता है। यदि हम चाहें कि हम स्वस्थ रहेंगे, इसके पीछे दृढ़ता हो और विश्वास हो तो बीमारियाँ वैसे ही भाग जाती हैं। दूसरा, हमारे भाव भी बहुत प्रभावशाली होते हैं। क्रोध, चिड़चिड़ापन, द्वेष आदि व्यक्ति में शारीरिक रोग भी पैदा कर देते हैं। मानसिक रोग तो यह विकार स्वयं हैं ही। निराशा भी शरीर को ढीला कर देती है। **उमड़ता हआ सबके प्रति प्रेम और सहानुभूति व्यक्ति के स्वास्थ्य पर खूब अच्छा प्रभाव कर सकते हैं। उत्साह तो बल प्रदान करता ही है।** (पत्र 456, पृष्ठ 451)

❖ ❖ ❖

प्रभु के बराबर में किसी को नहीं रखना। उसके आगे झुकते समय सभी चाहों को उसके चरणों में चढ़ा देना है। 'तेरी इच्छा पूरी हो माँ! (पत्र 456, पृष्ठ 451)

❖ ❖ ❖

आपके भावों की गहराई तक मैं क्या पहुँच सकता हूँ। मैं तो उस जगजननी के आगे माथा टेकना ही जानता हूँ। प्रार्थना करता हूँ 'माँ! चैन दे। चैन दे। छका दे पूरी तरह से इस प्यासी आत्मा को। छका दे ज्ञान से, - प्रेम से, अपनी अनुभूति से'। मेरी प्रार्थना को माँ ठुकरायेगी नहीं, यह मैं जानता हूँ। मेरा विश्वास है क्योंकि मैं माँ को जानता हूँ। (पत्र 457, पृष्ठ 452)

❖ ❖ ❖

वही लीलामयी ही तो पुकार बन हमारे भीतर तड़पती है। वही मंगलमयी विरह की दाह होती है और मिलन की शान्ति, वही है हमारा साध्य, साधन और सिद्धि। वही हमारी गति है—हमारा रास्ता है। उसी के चरणों में यह माथा, यह हृदय, यह प्राण और तन का कण कण डाल दिया है। उसी के चरणों में रख देना है हृदय की कसक को भी। जितने संस्कार निश्शेष होते हैं, वासनाएँ क्षीण होती हैं उतना ही प्रेम का उत्तरोत्तर

उज्ज्वल रूप प्रकट होता है और उतना ही व्यक्ति आनन्दमय होता चला जाता है। सभी ठौर अन्त में प्रेम बरसने लगता है और प्रभु ही प्रभु दीखता है। यही इस मार्ग का पूर्ण अद्वैत है। (पत्र 457, पृष्ठ 452-253)

❖ ❖ ❖

प्रभु की अपार दया से ही यह मार्ग खुलता है। जितना यह रास्ता विषम है उतना ही तेज़ी से ले जाने वाला भी है।

(पत्र 457, पृष्ठ 453)

❖ ❖ ❖

भला क्यों हो परेशानी, क्यों हो इतनी वेदना? मैं तो समझता हूँ कि **विश्वास और निर्भरता के अभाव के कारण ही ऐसा होता है।** क्या यह विश्वास नहीं है कि जो कुछ आप को मिला है, वह प्रभु की कृपा से मिला है। क्या यह भरोसा नहीं कि उसने आपको थाम रखा है और वह आगे ले जायेगा। क्या यह सत्य नहीं कि रात दिन उसकी शक्ति का प्रभाव आप में रहता है। यदि ऐसा भरोसा है, विश्वास है तो क्यों होती है व्याकुलता? जिसने इतना काम किया है सो और भी जो ठीक होगा करेगा। उसके लिए उतावली क्यों हो? वह हमसे अधिक जानता है। **जब हम ऊँची अनुभूतियों के योग्य** होंगे तो वह निश्चित ही होंगी। उसके योग्य भी तो वह ही करता जाता है। (पत्र 459, पृष्ठ 454)

❖ ❖ ❖

रोने की नहीं, हँसने की आवश्यकता है। जितना हम उस की कृपा को स्वीकार करके आगे प्रेम से, कृतज्ञता से झुक जाते हैं, उतनी ही उसकी कृपा और बरसती है। परेशानी तो रास्ता बन्द कर देती है उसकी कृपा का। जब भीतर व्याकुलता हो तो उसके पीछे भी प्रभु की शक्ति को देखें। यह भी उसकी दी हुई है और उसके चरणों में रख दें। फिर जल्दी ही शान्ति हो जायेगी। भीतर शान्ति के पीछे, आनन्द के पीछे, व्याकुलता के पीछे, सभी अनुभूतियों के पीछे मालिक के ही हाथ को देखना चाहिये। किसी भी अनुभूति के लिये इच्छा न करनी चाहिए। भीतर से चाह हो तो उसे प्रभु के चरणों में रख देना। (पत्र 459, पृष्ठ 454)

❖ ❖ ❖

आवश्यकता है स्थिरता की, शान्ति की, समता और सौम्यता की। जितना

यह कुछ भीतर आयेगा, उतना ही आप ऊँची अनुभूतियों को पचा सकेंगी, इनके अभाव में अपने को और इस शरीर को संभालना कठिन हो जाता है। (पत्र 459, पृष्ठ 455)

❖ ❖ ❖

प्रभु के प्रति भावना को दृढ़ करियेगा। उससे अपने नाते को अनुभव करने की चेष्टा करियेगा। यह प्रभु का ही काम है इस भावना से सेवा कार्य किया करियेगा। और उसकी स्मृति भी कार्य में बनाए रखने की चेष्टा करें। समय का निश्चय करने की चेष्टा करियेगा। सीमाएँ तो प्रत्येक व्यक्ति की रहा करती हैं उन्हीं के अनुसार सभी ठीक करना चाहिए। (पत्र 460, पृष्ठ 455)

❖ ❖ ❖

नाम का सहारा बहुत बड़ा है। क्रोध के आवेश को प्रतीत करते हुए नाम का सहारा लेकर प्रभु शरण हो जाने से वह शान्त हो जाता है। क्रोध में साक्षी बन जाना चाहिए। उसको अलग खड़ा होकर देखें दूसरा बातों को ठीक समझना चाहिए। तीसरा **क्रोध में कुछ बोलना अथवा करना ना चाहिए।** जब वह शान्त हो जाए तभी आदमी ठीक सोच अथवा कर पाता है। (पत्र 461, पृष्ठ 455-456)

❖ ❖ ❖

यदि हम माँग करें भगवान से कि अपने चरणों की सच्ची प्रीति दे और जिद्द से माँग करें तो वह भला बिना सुने कैसे रह सकता है। उसे सुनना ही पड़ता है और साधक को भक्तिदान मिल जाता है। यही तो जिसे पाकर व्यक्ति कृतकृत्य हो जाता है। (पत्र 466, पृष्ठ 459)

❖ ❖ ❖

हमारे भीतर से प्रबल माँग है मालिक के पास हो जाने की, उसका ही हो जाने की, भीतर के बन्धन को पूरी तरह से तोड़ देने की, तो वह पूरी होती ही है। बाहर भी वैसी परिस्थिति बनती है और भीतर भी वैसा होने लगता है। हाँ धैर्य चाहिए और माँग बनी रहनी चाहिए। प्रभु सुन लेते हैं। (पत्र 467, पृष्ठ 460)

❖ ❖ ❖

जितना ही हमें सिवाय प्रभु के और कोई आश्रय दीखता है, उतना

ही हम उसके द्वार से दूर पड़े रहते हैं। जो जितना ही दुर्बल है, असहाय है, उतना ही अधिक वह कृपा का पात्र होता है। शरणागति के धर्म में तो प्रभु का अटल-विश्वास उसकी कृपा का अनन्य-भरोसा और उसके चरणों की प्रीति ही महत्व रखते हैं। (पत्र 473, पृष्ठ 465)

❖ ❖ ❖

दिव्य अमर प्रेम तो प्रभु का - माँ का स्वरूप ही है। वही प्रेम नीचे के स्तरों में उन स्तरों की आवश्यकताओं के अनुसार रूपान्तिरित होता है। मानव हृदय के स्तर पर आकर वह भाई-बहिन, माँ-बेटा, पति-पत्नि आदि भावों में व्यक्त होता है। वात्सल्य माधुर्य, सख्य, दास्य आदि भाव तो मानव हृदय के भाव हैं। वही नि:सीम, निर्गुण प्रेम यहाँ सगुन और साकार हुआ दीखता है। वह एक ही अनेक रूप होता है।

(पत्र 474, पृष्ठ 466)

❖ ❖ ❖

प्रभु कृपा से ही लाभ होता है। उसके आगे झुकिएगा **प्रेम के दान के लिए। वह यदि प्रेम की एक कणिका भी दे देगा तो जीवन कुछ और ही हो जायेगा।** (पत्र 474, पृष्ठ 467)

❖ ❖ ❖

जहाँ तक मनुष्य की निजी सुगति का सम्बन्ध है सन्तान का अभाव कुछ बिगाड़ नहीं सकता। साधनशील व्यक्ति बन्धता है तो केवल मात्र अपनी ग़लत धारणा से अन्यथा उसके लिये रोक कहाँ। लोक में यश वाली बात रही है। वह होगा तुम्हारे ऊँचे व्यवहार से, प्रेम से और सेवा से। परन्तु है तो वह भी एक बन्धन ही। व्यक्ति को भला होना चाहिये इसमें कोई सन्देह नहीं, परन्तु यश के लिए व्यक्ति वैसा करे यह तो तुच्छ भावना है। अमरता है प्रभु के ही रहने में। वैसी अमरता सम्मान के द्वारा नहीं। यश है उसी का होकर जीने में, और निश्चिन्तता भी उसी में है।

(पत्र 478, पृष्ठ 469-470)

❖ ❖ ❖

कर्म योग का रहस्य तो कर्म करके सीखा जाता है। व्यवहार भी व्यवहार के द्वारा सीखा जाता है। मरना भी मर कर सीखा जाता है। कैसा अजीब है यह खेल और कैसी अजीब है यह साधना। (पत्र 480, पृष्ठ 471)

❖ ❖ ❖

आपने कहा था राम नहीं निकलता। सो ग़लत है। नाम माँ की देन है। 'नाम' माँ का आदेश है। माँ के आदेश का तिरस्कार माँ का तिरस्कार है। ठीक समझ लेने से नाम निकलेगा। यह माँ के समीप होने का रास्ता है। माँ के प्यार की ही माँग है कि नाम का चिन्तन हो। अभी नाम के द्वारा आप में बहुत कुछ होने को है। नाम चलना ही चाहिये। चलेगा भी।

(पत्र 480, पृष्ठ 471)

❖ ❖ ❖

किसी का मज़ाक उड़ाना बुरा है। परन्तु हमेशा हँसमुख रहना तो आवश्यक है। जब हम जीवन की सभी बातों को उदारता से और अध्यात्म की ऊँचाई से देख सकते हैं तो हम हँस पाते हैं और उसी हँसी के पीछे एक अथाह गम्भीरता भी रहती है। (पत्र 481, पृष्ठ 472)

❖ ❖ ❖

भीतर रही हुई बातें बीमारी पैदा करती हैं। प्रकट कर देने से भीतर साफ रहता है। **कहीं दिल खोलना सीखना चाहिए।**

(पत्र 481, पृष्ठ 473)

❖ ❖ ❖

'दुनियाँ बुरी है इसलिए दुनियाँ से दूर रहो' यह मन्त्र भी मेरी समझ में नहीं आता है। जिसे हम बुरा कहते हैं – बुरा देखते हैं। उसमें भी भलाई है। कर्तव्य की जितनी माँग है उतना मिलना ही चाहिए। सेवा के निमित्त मिलें, बिना प्रभावित हुए मिलें, प्यार करने के निमित्त मिलें। अपने प्यार से दूसरों को स्निग्ध कर दें। ठीक व्यवहार करें। चापलूसी न करें, दिल से प्यार करें। (पत्र 481, पृष्ठ 473)

❖ ❖ ❖

भजन शान्ति का स्त्रोत बन जायेगा। भगवान का सहारा मिल जायेगा नाम के द्वारा। मालिक के आगे दिल और दिमाग दोनों को खोलना सीख लेना है। आखिर जीवन में सहारा है तो उसी का है। वही तो हमारा जन्म-जन्म का साथी है। यहाँ की प्रीतियाँ और आकर्षण तो उसके मुकाबले में क्षणिक ही हैं। (पत्र 483, पृष्ठ 475)

❖ ❖ ❖

जितने संस्कार निश्शेष होते हैं, वासनाएँ क्षीण होती हैं – उतना ही

प्रेम का उत्तरोत्तर उज्ज्वल रूप प्रकट होता है और उतना ही व्यक्ति आनन्दमय होता चला जाता है। सभी ठौर अन्त में प्रेम बरसने लगता है और प्रभु ही प्रभु दीखता है। यही इस मार्ग का पूर्ण अद्वैत है।

(पत्र 486, पृष्ठ 478)

❖ ❖ ❖

प्रभु की अपार दया से ही यह मार्ग खुलता है। जितना यह रास्ता विषम है उतना ही तेज़ी से ले जाने वाला भी है। ऐसे लगता है।

(पत्र 486, पृष्ठ 478)

❖ ❖ ❖

'जहाँ स्त्री का तिरस्कार होता है, उससे भागने की चेष्टा होती है, जहाँ उसमें जगजननी को न देखकर उससे विमुख हुआ जाता है, वहीं भय है। (पत्र 488, पृष्ठ 479)

❖ ❖ ❖

माँ तो मुझे हर तरह से निर्मल ही करती दीखती है वह जिस भी रूप में जो भी लीला करती है मुझे तो माँ ही दीखती है। **ऐसी बसी है वह भीतर कि हर चेष्टा उसकी ही दीखती है। उसकी कृपा ने निर्भय किया है।** तभी तो माँ मुझे गोदी में खेलाती है। तभी तो माँ मुझे अंक भर छाती से भी लगा लेती है। (पत्र 488, पृष्ठ 479)

❖ ❖ ❖

जो भाव आपके लिए सहज हो उसी को पनपने दीजिएगा।

(पत्र 489, पृष्ठ 480)

❖ ❖ ❖

जब माला छोड़कर चुपचाप बैठने की इच्छा हो तो वैसा ही करना चाहिए। (पत्र 489, पृष्ठ 480)

❖ ❖ ❖

वास्तव में तो व्यक्ति को अपने को प्रभु के हाथों में सौंप देना होगा। जो हैं और जैसे हैं उसके हैं। कर्तव्य भी सभी उसके हैं, जितना चाहे करवा ले। जैसा चाहे सामर्थ्य दे। ऐसी निष्ठा हो जाने से कर्म तो भगवान् का पूजन ही हो जाता है। कर्तव्य का भार सता नहीं सकता। फिर क्रोध तथा अहंकार के लिए गुञ्जाइश नहीं रहती। (पत्र 492, पृष्ठ 482)

❖ ❖ ❖

आगे के लिये भले कर्म करने चाहियें। भला सोचें, प्रेम करें, सेवा करें, प्रभु का चिन्तन करें—यही तो रास्ता है। किसी को दु:खी करने से दु:ख होगा। सुख देने से सुख होता है। यह कर्म का नियम है। टाला नहीं जा सकता। (पत्र 494, पृष्ठ 484)

❖ ❖ ❖

प्रभु से ऊपर किसी को भी नहीं रखना चाहिए अन्यथा हमारी माँग बल रहित हो जाती है। नाते-रिश्ते दुनियादारी सभी उससे हटकर हैं। वह सभी का सूत्रधार और स्वामी है। हम उसे ही चाहें।

(पत्र 496, पृष्ठ 485)

❖ ❖ ❖

भीतर माँग तो होनी ही चाहिए। जितनी माँग होगी, जैसी माँग होगी वैसी ही कृपा बरसेगी। प्रभु का नाम तो बलपूर्वक लिया जाता है। वह बल पुकार का बल होता है। उन्हें कहिएगा कि जबरदस्त माँग पैदा करें।

(पत्र 499, पृष्ठ 488)

❖ ❖ ❖

जहाँ भी अपने को निर्बल पाओ वहीं प्रभु के आगे पुकारना होगा। वह बल देंगे। वह रास्ता देंगे और तुम आगे चल सकोगी। बाहर की दृष्टि से सुख दु:ख तो आयेंगे ही। इनसे छुट्टी किस व्यक्ति को मिल सकी है। हाँ, सम रहकर सहने की योग्यता की माँग करनी चाहिये।

(पत्र 501, पृष्ठ 489)

❖ ❖ ❖

शरीर तो आने-जाने वाली वस्तु है। सुख और दु:ख भी आते जाते हैं। भगवान् के चरणों की प्रीति ही अलभ्य है। उसके लिये ही माँग करनी चाहिये। भगवान् की कृपा होती है तो भीतर समता आ जाती है, राग द्वेष मिट जाता है। अहंकार भी क्षीण हो जाता है। मानापमान का भाव भी चला जाता है। तब सभी आनन्दमय हो जाता है। भगवान को सभी में पाया जा सकता है। (पत्र 502, पृष्ठ 489)

❖ ❖ ❖

भोजन के विषय में जिह्वा की गुलामी छोड़ कर शरीर की अनुकूलता की दृष्टि से भोजन करियेगा। हम जो चाहें मज़े में खा सकते हैं। बस

मनोवृत्ति बदलने की आवश्यकता है। जो भी चाहें हम छोड़ सकते हैं, यदि हम ठीक तरह से उस विषय में सोचना आरम्भ करें। नाम जपने वालों में तो महान मनोबल पैदा हो जाता है। (पत्र 502, पृष्ठ 490)

❖ ❖ ❖

उसकी शरणागति का अर्थ है अपने को उसकी इच्छा में मिटा देना। अपनी चाह को भी उसके चरणों में रख देना। चाह रखनी तो केवल मात्र पूरी तरह उसका हो जाने की ही और सभी आकाँक्षाओं को उसके चरणों पर वार देना होगा। बस फिर शान्ति का द्वार खुल जायेगा। वह अवलम्बन जिसके बिना आपको परेशानी हो रही है, मिल जायेगा। (पत्र 505, पृष्ठ 491)

❖ ❖ ❖

हम सम्मान की माँग करते हैं दूसरों से तो नहीं मिलता है, हम मान देते हैं तो स्वयं मिलता है। यह व्यवहार का नियम है। हमारा किया हुआ हमारे साथ लगा रहता है। तत्काल नहीं फलित होता है और फिर वह फल देता रहता है। हमने आदर दिया हो दूसरों को तो किसी दिन वह लौट कर हमें मिलता है। हमने निरादर किया हो तो वह भी लौट कर मिलना है। यह हिसाब चुकाना पड़ता है। इस कर्जे से हम कैसे बच सकते हैं? हाँ, परेशानी से बच सकते हैं। यह रहस्य समझ लेने से दु:ख नहीं होता। दूसरों पर गुस्सा नहीं आता। द्वेष नहीं होता। आगे के लिये हम और काँटे नहीं बोते हैं। (पत्र 506, पृष्ठ 492)

❖ ❖ ❖

दूसरों की बुराई सोचने से हम और बुरे होते हैं। जो हम करेंगे उसके लिये हमें भोगना होगा। जो दूसरे करेंगे उसके लिये उन्हें भोगना होगा। अपनी सोच करो। अपने को सुधार पायेंगे तो फिर दूसरों को भी सुधारने का काम हो सकेगा। (पत्र 506, पृष्ठ 492)

❖ ❖ ❖

सुखी रहने के लिये ठीक सोचना। सोचने लायक बात सोचनी और भूलने लायक बात भूलनी ज़रूरी है। सुखी रहने के लिये अनादर के बदले आदर, घृणा और क्रोध के बदले में प्यार और सेवा करनी सीखनी है।

यह देवताओं का, सन्तों का, सुखी रहने वालों का रास्ता है।

(पत्र 506, पृष्ठ 493)

❖ ❖ ❖

हाँ, निष्ठा की अनन्यता आवश्यक है। डोल जाने से परेशानी होती है। धीरे-धीरे ही ठीक निष्ठा जगती है। उतनी ही बात कहनी चाहिये जितनी उचित हो। व्यर्थ में खण्डन मण्डन के चक्कर में नहीं पड़ना है।

(पत्र 512, पृष्ठ 497)

❖ ❖ ❖

सत्य का नियम अटूट है, चोरी और प्रकट करने में संकोच, इनमें से कोई भी जहाँ होती है वहाँ अध्यात्म की विशुद्ध धारा कलुषित हो जाती है। यह बिल्कुल न भूलना चाहिये। (पत्र 512, पृष्ठ 497)

❖ ❖ ❖

हमारे व्यवहार के कारण दूसरों को खेद न होना चाहिये। यदि इसकी सम्भावना हो तो व्यवहार बदलना आवश्यक है। (पत्र 512, पृष्ठ 497)

❖ ❖ ❖

सभी लोग अपनी स्थिति और समझ के अनुसार ही आलोचना करते हैं और कर भी सकते हैं। उसका सभी को अधिकार है। हमें बुरा न मानना चाहिये। (पत्र 515, पृष्ठ 499)

❖ ❖ ❖

यदि हम धैर्य से अपने प्रयत्न को जारी रखें तो समय पाकर हमारे मानसिक जगत् का ढाँचा बदल सकता है। जैसा हम सोचने लग जाते हैं और सोचते चले जाते हैं वैसी भावनायें बन जाती हैं।

(पत्र 517, पृष्ठ 500)

❖ ❖ ❖

पत्थर पर रस्सी के घिसने से पत्थर कट जाता है। बूँद-बूँद से घड़ा भर जाता है। इसी प्रकार संस्कार के संचय से व्यक्ति का मन बदल जाता है। जैसे दूसरी बातें सुनिश्चित हैं वैसे ही यह भी सुनिश्चित है।

(पत्र 517, पृष्ठ 500)

❖ ❖ ❖

जैसे-जैसे चाह दृढ़ होगी, जैसे-जैसे भूख जगेगी, सभी बातें आपके

अनुकूल होने लगेंगी। प्रभु से प्रार्थना किया करें कि वह अपने चरणों का प्रेम दें, अपनी शक्ति भक्ति दें। (पत्र 517, पृष्ठ 501)

❖ ❖ ❖

जो करने लायक बात है वह करते जाना है। समय पाकर यह संस्कार समाप्त हो जायेंगे। फिर आप अपने में श्रद्धा की प्रतीति कर पायेंगे। (पत्र 517, पृष्ठ 501)

❖ ❖ ❖

दूसरों की दृष्टि को, उनके भीतर की लालसाओं को भी तो देखना चाहिये, जैसे हम अपने को देखते हैं। हम देवता नहीं। क्यों सोचें हम कि दूसरे देवता हैं। वह भी विकारों से पूर्ण हैं और हम भी। (पत्र 521, पृष्ठ 503)

❖ ❖ ❖

जीवन में भाव और अभाव दोनों ही चलते हैं। जीवन को स्वीकार करना होगा। दु:खों को भी स्वीकार करना होगा। जो हमें सुख प्राप्त हैं उनके हम इतने अभ्यस्त हो जाते हैं कि हमें उनका तो भान ही नहीं होता। दुनियाँ में ऐसे भी तो हैं जिन्हें खाने पहिनने को भी नसीब नहीं होता, जिनको प्यार करने वाला कोई भी नहीं। (पत्र 521, पृष्ठ 503)

❖ ❖ ❖

दूसरे लोगों का तो धन्यवाद करना चाहिये कि उन्होंने शीशे का काम किया और भीतर की मैल प्रगट कर दी आगे किसने सुधारा है। किसने आज की स्थिति तक पहुँचाया है। जिसकी कृपा का फल आगे प्राप्त है उसी मंगलमयी की कृपा से हम क्रोध से भी मुक्त हो सकते हैं। अपने विकार को उसके समक्ष स्वीकार करना है। उन्हीं चरणों पर रख देना है अपने को उन्हीं पर निर्भर हो जाना है। उतावला होने की आवश्यकता नहीं कि तत्काल ही विकार दूर होना चाहिए। वह दूर करेगी। घिस-घिस कर निकाल देगी। यह अटूट विश्वास रहना चाहिये। व्यक्ति को अभिमान हो जाता है अपनी निर्मलता का। माँ की कृपा होती है तो भीतर के विकार बाहर आते हैं और फिर दूर होते हैं। अपने को पूरी तरह से माँ पर छोड़ो किसी प्रकार के अनुभव की, आनन्द की भी, प्रेम की भी कामना न करो। वह स्वयं भीतर समता ले आयेगा, अपने को सम्भलने का सामर्थ्य

देगा। दोष दर्शन की प्रवृत्ति ही ग़लत है। दूसरों की भलाई देखा करिए दूसरों को सुधारने की चेष्टा का परिणाम अच्छा नहीं होता है।

(पत्र 523, पृष्ठ 506)

❖ ❖ ❖

इसका परिणाम सभी के लिए कल्याण कर होता है। जब हम दूसरों की ग़लतियाँ देखते हैं तो हमें भी उसी प्रकार से तोला जाता है। वह हमारे लिए असह्य हो उठता है। जब हम ग़लतियाँ देखते हैं और फिर दूसरों से उस विषय में चर्चा करते हैं तो हम घोर अपराध करते हैं।

(पत्र 523, पृष्ठ 506)

❖ ❖ ❖

सभी कुछ तो उस मंगलमयी के आगे, उन पावन चरणों में ढेर करना होगा । क्या वासना है स्वर्ग की, क्या चाह है सिद्धि की ? क्या चिपकन है किसी लोक विशेष की ? माँ, वह जो अन्तिम घाटी है, जिस पर बलि ली जाती है – जहाँ सिर दिया जाता है, वहाँ सभी धर्मों की, सभी मर्यादाओं की, सभी अभिमानों और कर्त्तव्यों की बलि दी जाती है तब व्यक्ति निर्द्वन्द होता है । तभी उसका हो पाता है । ऐसा समझ में आता है । तब न कुछ पाप रहता है, न पुण्य । न उल्टा और न सुल्टा ।(पत्र 524, पृष्ठ 507)

❖ ❖ ❖

उत्तरोत्तर बढ़ती हुई समता, शान्ति और निर्मलता हमारी उन्नति की सूचक हैं । (पत्र 526, पृष्ठ 509)

❖ ❖ ❖

प्रभु चरणों का अटल भरोसा, उसकी कृपा पर पूरी तरह से निर्भर हो जाना यही मार्ग है उसके समीप होने का। उसके चरणों में सभी को उडेल देना, यह मार्ग है कृपा तथा भक्ति लाभ करने का। उसके भरोसे पर जीवन-मृत्यु की, संयोग तथा वियोग और सुख तथा दुख की घाटियों में से हँसते-हँसते गुजरा जाता है और गुजरना तो होता ही है सभी को।

(पत्र 531, पृष्ठ 512)

❖ ❖ ❖

आपको भीतर से बिल्कुल साफ हो जाना है, राग द्वेष से, घृणा से अमर्ष से पूरी तरह से रहित हो जाना है, खूब सौम्य होना है, प्रेम पूर्ण

होना है, दूसरों में भी प्यार जागृत करने योग्य हो जाना है। संस्कारों का बन्धन बड़ा पक्का होता है। उसे खोला जाता है त्याग के द्वारा, अपने को मिटा करके। अपनी मान की भावना को भी मटियामेट करना पड़ सकता है। वह सभी कुछ उसकी कृपा से, उसकी चेतना के अवतरण से सुगमता से होता है। उसके हो जाने की पुकार करती जाइयेगा। अपने विकार दीखने लगेंगे और क्षीण होते जायेंगे। (पत्र 540, पृष्ठ 518-419)

❖ ❖ ❖

झूठ छिपा नहीं रहता तो सच्चाई भी छिपी नहीं रहती। बुराई छिपी नहीं रह सकती तो भलाई भी, पवित्रता भी किसी दिन प्रकट होगी। अपने भीतर टटोलना होता है बातें सुन कर ठीक हों, कुछ सिखाने वाली तो स्वीकार करनी चाहिये अन्यथा सुनी अनसुनी कर देनी होती हैं **जो लोग ग़लत बातें करते हैं वह दया के पात्र हैं। उन पर रोष** कैसे?

(पत्र 541, पृष्ठ 519)

❖ ❖ ❖

जब दूसरों का प्रतिरोध हमारे में तनाव नहीं पैदा कर पाता, तो हम सहज में दूसरों को प्रभावित कर सकते हैं। ऐसा होना व्यक्ति के भीतर के खिल उठने का, और प्रबल हो जाने का सूचक होता है।

(पत्र 552, पृष्ठ 526)

❖ ❖ ❖

जितना कोई मिट सकता है, उतना ही खिल जाता है और खुल जाता है, फलता और फूलता है। बीज गल कर विकास को पाता है, ठीक वैसे ही। (पत्र 553, पृष्ठ 528)

❖ ❖ ❖

आपा खोना – अहंभाव से ऊपर उठना – अध्यात्म की ऊँची घाटी है। सती साध्वी स्त्री इस पाठ को घर में पढ़ सकती है। ईमानदार पति भी इस पाठ को गृहस्थ में पढ़ सकता है। कैसा अमूल्य अवसर है इस महान् पाठ को पढ़ने का। (पत्र 553, पृष्ठ 528)

❖ ❖ ❖

कैसे मिटाया जाता है आपा? अपनी रुचियों और चाहों का त्याग करके। अपने सुख की परवाह न करके। यह त्याग पति तथा पत्नी दोनों को ही

उज्ज्वल कर देता है। (पत्र 553, पृष्ठ 528)

❖ ❖ ❖

यही त्याग सेवा होती है। सेवा तो मनोवृत्ति है। दूसरों के लिए उपयोगी होने की सच्ची क्रियाशील भावना है। सेवा करके स्वार्थपरता दूर की जाती है। नि:स्वार्थ हुआ जाता है। यज्ञमय हुआ जाता है। यज्ञमय पुरुषोत्तम का प्रत्यक्ष पूजन होता है सेवा। (पत्र 553, पृष्ठ 528)

❖ ❖ ❖

बिना प्रेम के तो मनुष्य मनुष्य नहीं होता, सूखा ठूँठ होता है। और बिना प्रेम के प्रभु का द्वार भी नहीं खुलता। गृहस्थ जीवन में दिल पिघलना सीखता है। घर वालों के लिए पिघलना सीख कर वह प्रभु के लिए भी पिघल सकता है। (पत्र 553, पृष्ठ 528)

❖ ❖ ❖

प्यार देना, प्यार कर सकना, सुखी रहने का सार है।
(पत्र 553, पृष्ठ 528)

❖ ❖ ❖

ममता-मोह का, आसक्ति का इलाज है समर्पण। यह सब कुछ प्रभु का ही तो है। हम अपना समझ बैठते हैं। इसी लिये तो बन्धते हैं। उसकी चीज़ों को उसी के अर्पण कर देना होगा। सभी कुछ उसी का समझना होगा। बाल-बच्चों को, पति को और घर-बाहर को भी उसी का समझकर बरतना होगा। (पत्र 553, पृष्ठ 529)

❖ ❖ ❖

इस निष्ठा से कर्म करता हुआ व्यक्ति बन्धन रहित हो जाता है।
(पत्र 553, पृष्ठ 529)

❖ ❖ ❖

इस निष्ठा से जो पति की सेवा है वह प्रभु की पूजा हो जाती है।
(पत्र 553, पृष्ठ 529)

❖ ❖ ❖

बच्चों का काम-काज भी प्रभु का ही काम-काज हो जाता है। वे तो जीते जागते ठाकुर जी हो जाते हैं। समूचा जीवन सजीव अर्चना हो जाती है उस यज्ञेश्वर भगवान की। यह गृहस्थ माया जाल नहीं दीखता;

आनन्दमयी यज्ञस्थली दीखती है। (पत्र 553, पृष्ठ 529)

❖ ❖ ❖

सत्यता और सच्चाई इस पवित्र नाते की आधारशिला है। इसी आधार पर त्याग के द्वारा प्यार का भवन खड़ा होता है। (पत्र 553, पृष्ठ 530)

❖ ❖ ❖

दूसरा व्यक्ति जो भी है, और जैसा भी है उसे स्वीकार करना है। उसकी कमियों सहित ही उसे स्वीकार करना होगा। हमें प्यार देना है।
(पत्र 553, पृष्ठ 530)

❖ ❖ ❖

जीवन में सुखी रहने का तरीका है, दूसरों को सुखी करने की चेष्टा करना। दु:खी होने के लिए अपने सुख की चिन्ता ही काफ़ी है।
(पत्र 553, पृष्ठ 530)

❖ ❖ ❖

दूसरे के सुख को उसी के पैमाने से आँकना चाहिये, अपने से नहीं। हम अपनी रुचियों को दूसरे पर लाद कर उसे परेशान करते हैं।
(पत्र 553, पृष्ठ 530)

❖ ❖ ❖

हम अपनी उदार भावना और विशाल सहानुभूति के द्वारा ही दूसरे को ठीक समझ सकते हैं, और उसके लिये उपयोगी हो सकते हैं।
(पत्र 553, पृष्ठ 530)

❖ ❖ ❖

स्वतन्त्रता में वास्तविक प्रीति सम्भव है। स्वतन्त्रता में ही विकास सम्भव है। (पत्र 553, पृष्ठ 531)

❖ ❖ ❖

मधुरता, त्याग और दृढ़ता गृहस्थ जीवन की घोरतम समस्याओं को हल कर सकते हैं। (पत्र 553, पृष्ठ 531)

❖ ❖ ❖

आँधियाँ गृहस्थ जीवन का नियम हैं। उनमें घबराना गृहस्थ जीवन के वास्तविक रूप को न जानना है। आँधियाँ हमें प्रभु के समीप कर देती हैं। उसका सहारा लेना सिखाती हैं। उन्हीं से गम्भीरता और समता का

पाठ पढ़ा जाता है। (पत्र 553, पृष्ठ 531)

❖ ❖ ❖

मुख मण्डल पर मधुर मुस्कान, मुख से प्रेम भरी वाणी, और प्यार भरे हृदय गूँजता हुआ 'राम नाम' मिलकर किसी भी गृहस्थ को आनन्दमय बना सकते हैं; इनका अभ्यास करना। (पत्र 553, पृष्ठ 531)

❖ ❖ ❖

इस नाते को आध्यात्मिक मित्रता समझता हूँ। (पत्र 553, पृष्ठ 531)

❖ ❖ ❖

जो भगवान पर विश्वास रखता है वह असहाय कैसे हो सकता है? जिसके सिर पर प्रभु का हाथ है वह दीन कैसा? क्या संसार के सहारों की चाह है? क्या संसार के प्यार की इच्छा है? यह तो दोनों ही धोखा देते हैं। उसी के सहारे से सबका सहारा होता है। उसके प्यार के बराबर कोई प्यार नहीं। दुनियाँ का प्यार तो दरिद्रता है, कृपणता है। इसकी लालसा में दुःख होता है। अपने को दीन हीन समझना बन्द कर दो।

(पत्र 554, पृष्ठ 532)

❖ ❖ ❖

न दूसरे के दोषों को देखना चाहिये, न सुनना ही चाहिये। सुनकर आगे किसी से कहना तो घोर बात होती है। वह महान अपराध है। दूसरों की भलाई और उपकारों को ही याद करना और कहना चाहिये। ऐसा करने से शान्ति मिलती है। प्यार बढ़ता है। अपकार को विचारने और कहने से घृणा तथा द्वेष ही तो होते हैं। (पत्र 554, पृष्ठ 533)

❖ ❖ ❖

अपने व्यवहार को अच्छा करने की चेष्टा करो। जिस जिस के प्रति हृदय में द्वेष है, घृणा अथवा अमर्ष है, उसके लिये प्रभु से प्रार्थना करो कि भगवान उसका कल्याण करे। उनके प्रति प्यार की भावना भेजा करो।

(पत्र 554, पृष्ठ 533)

❖ ❖ ❖

सोते समय अपने दिन भर के किये कामों और वाणी और विचारों के विषय में सोचा करो। कहाँ तुमने भूल की है यह सोचा करो और आगे के लिये संकल्प किया करो। यदि इस तरह आप रोज़ रोज़ अपने

बारे में स्वयं छानबीन करेंगी तो विचार धारा बदल जायेगी। मन प्रसन्न रहने लगेगा। प्रभु की कृपा बरसेगी। (पत्र 554, पृष्ठ 533)

❖ ❖ ❖

जीते जी प्रभु से युक्त हो जाना और उसमें निवास करने लगना–इसी में तो है जीवन का साफल्य। (पत्र 558, पृष्ठ 536)

❖ ❖ ❖

क्या प्रभु की शरण में आकर भी दु:खी होना हो सकता है? विश्वास करो, मालिक ने तेरी बाँह पकड़ी है। तुझे गोदी में उठाया है। तेरे विकार तेरी ज़िम्मेदारी नहीं हैं। **दूर करना उसका काम है।** वह दूर कर देगा सभी विकारों को। हमें तो सहयोग देना है। उसका ही काम समझ कर जो अपने विषय में समझ आये वैसे सोचना और करना है।

(पत्र 561, पृष्ठ 537)

❖ ❖ ❖

दान के पात्र तो सबसे पहले वह लोग हैं जो असहाय हैं, अनाथ हैं और असमर्थ हैं। रोगी, विधवायें और अनाथ बच्चे दान के प्रथम पात्र हैं। दूसरा दर्जा है सामान्य जनता के हित का। शिक्षा, सफाई, नैरोग्य आदि के निमित्त दान दिया जाना चाहिए। हम अपने इष्टों मित्रों पर किए गये खर्च को दान में नहीं गिनते। जैसे असहाय मनुष्यों पर खर्चा किया जा सकता है उनके लिए दान दिया जाता है, ऐसे ही असहाय पशुओं के निमित्त भी। (पत्र 569, पृष्ठ 542)

❖ ❖ ❖

अपने लिए काम करने में तो बन्धन होता है। दूसरों के लिये काम नीरस लगता है। वास्तव में तो काम भगवान के लिये करना चाहिए। वही इस विशाल यज्ञ का यज्ञेश्वर है। आप भी उसके हैं और सभी उसके हैं। समाज उसका है और देश उसका है। सभी काम उसका है काम को भगवान् का हुकम समझ कर करिएगा। भगवान के लिये काम तो साधना हो जाता है। वह बन्धन काटने लगता है। (पत्र 577, पृष्ठ 548)

❖ ❖ ❖

जो आपके लिये ठीक हो उसी की माँग करिएगा। प्रभु इच्छा ही जीवन में घटित हो, ऐसा सोचना ही अपने लिये और दूसरों के लिये शक्ति का

मार्ग है। व्यक्ति सोचता है खुशी की और मोल लेता है परेशानी।

(पत्र 577, पृष्ठ 548)

❖ ❖ ❖

नाते तो प्रभु के नाते से ही भले होते हैं। अन्यथा बन्धन के कारण होते हैं। घर वालों के प्रति कर्त्तव्य का पालन करना चाहिये, प्यार भी देना चाहिये परन्तु भगवान का समझकर, ममता में किया गया प्यार तो दु:खी करता है। (पत्र 586, पृष्ठ 554)

❖ ❖ ❖

जीव की महान् समस्या होती है अपने को परिस्थिति में ढाल लेना। जो व्यक्ति अपने को परिस्थिति की सीमाओं में ढाल लेता है, वह परेशान नहीं होता। वह हर हालत में प्रसन्न रहता है।

(पत्र 587, पृष्ठ 555)

❖ ❖ ❖

जिसमें यह योग्यता आ जाती है वह अपने धैर्य से किये गये प्रयत्न से परिस्थिति को भी यथासम्भव अनुकूल बना लेता है।

(पत्र 587, पृष्ठ 555)

❖ ❖ ❖

जीवन को ऊँची दृष्टि से देखना सीखियेगा। उसी दृष्टि से जीवन की घटनाओं और अपनी होने वाली प्रतिक्रिया को देखना चाहिए। आखिर साधना तो सारे जीवन में समा जानी चाहिए। हमें सभी परिस्थितियों का सदुपयोग करना सीखना है। (पत्र 590, पृष्ठ 558)

❖ ❖ ❖

सेवा तथा साधना में परस्पर विरोध नहीं। वह तो एक ही के दो रूप हैं। जब सेवा से जो उपलब्धि होती है उससे, चिपकन हो जाती है, तभी सेवा साधना नहीं रहती, वह पूजा न होकर व्यक्तिगत कामना की तृप्ति का रूप धारण करती है। (पत्र 591, पृष्ठ 559)

❖ ❖ ❖

सुधारो अपने जीवन को, समझदारी से काम लो। कुसंगति से बचो। यदि तुम भगवान के रास्ते पर चलना चाहते हो तो फिर प्रलोभनों के आगे झुकने का क्या मतलब? बुराई बुराई है और दु:ख का कारण होती है।

कुसंस्कारों का संचय होता है बुरी संगति से। व्यक्ति आत्मबल को खो देता है। भगवान के पथ से भ्रष्ट होता है। लोक में हानि होती है। और परलोक बिगड़ता है। जैसे लोगों की संगति होती है वैसा ही मनुष्य बनता है। (पत्र 593, पृष्ठ 560)

❖ ❖ ❖

अधीरता के लिए अध्यात्म के मार्ग में स्थान ही नहीं। प्रयत्न के लिए है सो करिएगा। (पत्र 597, पृष्ठ 562)

❖ ❖ ❖

मैं वाह-वाह की कीमत पहचानता हूँ। भीतर वाला कहता है उस काम के लिए तेरी ज़रूरत नहीं तेरी ज़रूरत है दीन के, दुखिया के दर पर। अन्यथा इस भार रूप शरीर को उठाना बेकार है।(पत्र 605, पृष्ठ 567)

❖ ❖ ❖

यदि भगवान वैसा खेल खेलना चाहते तो वह कुछ और सा बना देते मुझे। (पत्र 605, पृष्ठ 567)

❖ ❖ ❖

तू मुझे मानित और लोक विख्यात देखना चाहती है। मुझे तो यह मोह ही दीखता है। क्या प्रभु के समीप होने का तरीका अपने को मिटाना है या अपना सिर दूसरों से ऊपर उठाने की चेष्टा है जो स्थान प्रभु ने इसके लिए नियत किये हैं वह इसे मिल रहा है, और भी मिलेगा आगे। किसी चेष्टा के परिणाम स्वरूप बना हुआ बिगड़ता है। सहज कर्म ही उत्तम होता है। (पत्र 605, पृष्ठ 567)

❖ ❖ ❖

किसी दीन दुखिया के लिए मैं माँग लेता दूसरों से भीख, किसी प्राण छोड़ने लायक बीमार के पास पहुँचने के लिए लोग भी क्षमा कर देते मुझे, यदि मैं प्रोग्राम रद्द कर देता। पर सम्मेलन में बोलने के लिए। मान पाने के लिए और बातें करके रास्ता दिखाने के लिए अमृतसरियों को यह कैसे हो? मैं अपनी ही दृष्टि में दोषी तथा पतित होऊँगा।

(पत्र 605, पृष्ठ 568)

❖ ❖ ❖

अशान्ति इस रास्ते की सहचरी है। वह जगाती, गहराई पैदा करती

है और निर्मल करती जाती है। अतः इसे भी उसी माँ की देन समझ कर स्वीकार करना होगा। फिर यह सहन हो जायेगी।

(पत्र 611, पृष्ठ 572)

❖ ❖ ❖

व्यर्थ के निराशात्मक विचारों को मत पालियेगा। घनात्मक विचारों का पालन करिये। निराशात्मक से स्वयं पिंड छूट जायेगा। परेशानी का कारण बाहर नहीं, आपके भीतर ही है। वह सभी कुछ जो आपको निरुत्साह तथा निराश बना देता है आपका शत्रु है। आप उसे निकाल फैंकियेगा।

(पत्र 612, पृष्ठ 573)

❖ ❖ ❖

भीतर उमड़ने वाले भाव को संभालना सीखना है। मैं जानता हूँ कि वह समुद्र के ज्वार की तरह होता है और सीमाओं को लांघ जाता है, पर, उसे संभाला जा सकता है, यह भी तो निश्चित ही है यह रास्ता ही ऐसा है। (पत्र 614, पृष्ठ 575)

❖ ❖ ❖

जीवन का लम्बा होना तो कोई अर्थवान् बात नहीं। यह उपयोगी हो, प्रभु का हो, उसके लिए हो। जब तक वह चाहे इसे इस स्थूल शरीर में रखे और जब न चाहे हटा ले। (पत्र 616, पृष्ठ 576)

❖ ❖ ❖

यह अभिमान होता है जिस पर चोट पड़ती है और मन हट जाता है इसके पीछे नासमझी भी है। प्यार ऊपर वाले व्यक्तित्व से नहीं करना चाहिये। वह तो गुण दोषों का पुलन्दा है। हम प्यार करते हैं, इतने मात्र से वह निर्मल और मधुर तो हो नहीं सकता। (पत्र 618, पृष्ठ 577)

❖ ❖ ❖

इस ऊपर वाले व्यक्तित्व के पीछे रहता है प्रभु का अंश – इस नन्हें रूप में भगवान वह हैं प्यार के वास्तविक पात्र। (पत्र 618, पृष्ठ 577)

❖ ❖ ❖

अपमान तथा कटुता तो व्यक्ति के लिए कसौटी होती है। वह इनके प्राप्त होने पर अपने अभिमान और आकाँक्षा के ऊपर उठ सकता है। दूसरा व्यक्ति तो हमें निर्मल करने का साधन बन सकता है। अतः उसके प्रति

तो कृतज्ञता होनी चाहिए। उदासीनता नहीं। (पत्र 618, पृष्ठ 577-578)

❖ ❖ ❖

प्यार देना चाहिए क्योंकि हमें देना अच्छा लगता है। बदला लेने की चाह से नहीं। अन्यथा वह दुकानदारी हो जाता है।(पत्र 618, पृष्ठ 578)

❖ ❖ ❖

दूसरों के लिये जैसे भी हो पाये, हित करने की चेष्टा करनी है प्रभु में डूबा रहना सीखना है आत्म त्याग से ही तो सेवा हो पाती है वह प्रभु का पूजन ही होता है। (पत्र 618, पृष्ठ 578)

❖ ❖ ❖

पढ़ते समय साथ में विवेक जागृत रहना चाहिए। जो कुछ छापेखाने में से निकला है, या जो कुछ किसी बड़े आदमी ने कहा है वह सभी ठीक ही होगा या हमारे लिए अनुकूल ही होगा, ऐसा कदापि नहीं है। (पत्र 621, पृष्ठ 580)

❖ ❖ ❖

जिस व्यक्ति ने केवल आरोह की पराकाष्टा को जाना हो वह केवल निर्गुण निर्विकल्प का प्रतिपादन करे तो करे। जिसने अवरोह को भी जाना है, जिसने भीतर की सहज समाधि का रसास्वादन किया है, उसका ब्रह्म तो सगुण-निर्गुण पुरुषोत्तम ही हो सकता है। गीता का भी ऐसा ही दृष्टिकोण प्रतीत होता है। (पत्र 621, पृष्ठ 580-581)

❖ ❖ ❖

जब हम किसी को अपना समझ लेते हैं तो उसके गुण दोष सहने ही होते हैं। समझदारी से सहने में मज़ा आता है।(पत्र 626, पृष्ठ 583)

❖ ❖ ❖

जब हम भगवान को अपना करके स्वीकार करते हैं। उसे जो घट-घट में रमता है, जब हम सारे संसार को अपना करके स्वीकार करते हैं। तो सहने होते हैं सभी के गुण-दोष हँसते-हँसते। वह तो भगवान का खेल दीखते हैं, वह व्यक्ति के गुण दोष थोड़ा रह जाते हैं। और वहाँ कहाँ रहती है मानापमान की भावना। कहाँ रहता है अहंकार और अमर्ष जो साधक को इतना परेशान करते हैं। कैसे आदमी सोच सकता है कि कोई मेरा नहीं, या उसे कोई अपनाता नहीं? इतनी थोड़ी सी समझ से संसार

ही बदल जाता है। (पत्र 626, पृष्ठ 583)

❖ ❖ ❖

अपनी भावना को व्यापक बनाओ। अपने विश्वास को समूचे जीवन में फैला दो। प्यार देना और सेवा करनी, यही तो जीवन का सौभाग्य है। इनके पीछे प्रभु का नाम हो, उसका योग हो तो कमी किस बात की रह जाती है। प्यार लेना और सेवा लेनी तो क्षुद्र दृष्टिकोण है। ऐसी माँग तो छोटी बात है। जो देना जानता है – उसे बिन-माँगे मिलता है।

(पत्र 626, पृष्ठ 583-584)

❖ ❖ ❖

अध्यात्म को यदि हम जीवन में सबसे ऊँचा स्थान नहीं देते और समूचे जीवन को उसी दृष्टिकोण से देखने और उसी सूत्र में पाने की चेष्टा नहीं करते तो वह मर जाता है हमारे लिये। हम आगे नहीं बढ़ पाते हैं। जितनी हम कीमत लगाते हैं उतनी चुकाने के लिए भी तैय्यार रहते हैं। (पत्र 632, पृष्ठ 586)

❖ ❖ ❖

आध्यात्मिक साधना की एक उच्च स्थिति पर मन का स्वभाव मूकता हो जाती है। शक्ति मात्र की शान्ति की प्रतीति होती है और नाम भी उसी में विलीन होता प्रतीत होता है। ऐसी अवस्था वाला साधक यदि नाम के अभाव के लिये व्याकुल हो तो अनुचित है। अपितु, इससे पूर्व मानसिक कार्य में पूर्णतया व्यग्र होने पर नाम की प्रतीति न भी हो तो भी कोई कमी वाली बात नहीं होती। ऊर्ध्वस्तर में अनवरत क्रिया होती है।

(पत्र 634, पृष्ठ 588)

❖ ❖ ❖

जीवन भर के संस्कारों को बदलना एक समस्या होती है। हम अपने संस्कारों के रंग में ही दूसरों के विचारों को समझ पाते हैं।

(पत्र 634, पृष्ठ 588)

❖ ❖ ❖

संयम को अनुचित महत्व देना इसी से अहंकार का सम्बन्ध है और यही आत्म समर्पण के लिये बाधक होता है। (पत्र 634, पृष्ठ 589)

❖ ❖ ❖

साधना के स्पष्ट दो मार्ग हैं। एक संयम-मार्ग, और दूसरा समर्पण-मार्ग। इन दो की प्रधानता से मैं यह दो नाम दे रहा हूँ। संयम के मार्ग में हम अपने पर दमन करते हैं - मन पर, इन्द्रियों पर और बुद्धि पर। भले ही हम इसको करने के लिये ईश्वर की शक्ति का आवाहन करें। परम सत्ता हमें उठने के लिए सहायता करे - यह हमारी आन्तरिक पुकार रहती है - व्याकुलता - आतुरता भी रहती है - उत्थान होता है और फिर पतन होता है। यों ही सिलसिले चला करते हैं। इस मार्ग में व्यक्तिगत कुण्डलनी का उत्थान तथा ऊर्ध्वगमन होता है। (पत्र 634, पृष्ठ 588)

❖ ❖ ❖

दूसरा मार्ग-समर्पण का मार्ग है। इसमें हमें विश्वास होता है (1) जो होता है भगवान् की इच्छा से होता है। (2) भगवान् मंगल मय है; वह मेरे हित को मुझसे अधिक जानते हैं, कर सकते हैं। अतः जो कुछ होता है परम मंगल के लिये होता है। भले ही मैं इस समय उस मंगलमयत्व को समझ न पाऊँ। (3) इसलिये हम अपनी इच्छाओं को आकाँक्षाओं को ज्ञान, युक्ति-बल सबको उसके आगे समर्पित करते हैं। और पुकारते हैं - **'त्वदिष्टं भवतु गोविन्द नतु मरिष्टम्'** मुझे उसकी कृपा के लिये पुकारने की भी आवश्यकता नहीं। उसकी महती कृपा के कारण ही मैं 84 लाख योनियाँ भोग कर मनुष्य योनि में हूँ और वह कृपा ही मुझे पुरुषोत्तम पद से संयुक्त करेगी। (पत्र 634, पृष्ठ 588)

❖ ❖ ❖

दुराव दुःख का कारण होता है उससे अशान्ति बढ़ती है और यह संक्रामक होने के कारण फैलता है। आपका कर्त्तव्य होना चाहिये दुराव को दूर कर डालना ऐसा करने के लिए कीमत देनी पड़ती है और दिमाग बरतना पड़ता है यह काम सम्भव कैसे हो सकता है? यह बताना मेरा काम है। (पत्र 635, पृष्ठ 590)

❖ ❖ ❖

यदि वास्तव में किसी के हृदय में दुराव न हो और हमें विश्वास हो जाए कि दुराव है तो हमारा विश्वास ही दुराव को रच देता है - हम में पैदा कर सकता है और दूसरे के हृदय में यदि व्यवहार में हमें इस बात का ख़्याल रहेगा तो हमारा व्यवहार अवश्य दुराव वाला हो जायेगा।

दुराव के दूर होने की सम्भावना ही जाती रहेगी। अत: पहले तो यह समझना चाहिये कि हमारे हृदय का मैल ही तो दूसरे के हृदय में मलिनता की कल्पना नहीं कर रहा है? फिर यदि ऐसा न समझा जाए और साफ दीखे कि दूसरे का व्यवहार दुरावपूर्ण है, तो भी इस बात को भूल ही जाना चाहिये। यदि यह याद आये तो इस भाव में कि हमें अपने हृदय को और व्यवहार को इतना अधिक शुद्ध और प्रेमपूर्ण करना है कि दूसरे का हृदय उस प्रभाव से शुद्ध हो जाय। (पत्र 635, पृष्ठ 590)

❖ ❖ ❖

यदि कोई हम से दुराव करे तो हमें नाराजगी क्यों? हम सभी भीतर के विकारों वाले हैं यदि वह विकार दृष्टि को धुँधला कर दे और ठीक समझ न आए तो क्या विस्मय? दुराव के मूल में प्राय: भ्रम होता है द्वेष की भावना प्राय: नहीं रहती और यदि हो भी तो हमें तो उसे भी जीतने को तैय्यार रहना ही चाहिये। प्रेम ही का तो रास्ता है चलने के लिये और कौन रास्ता हो सकता है। (पत्र 635, पृष्ठ 590)

❖ ❖ ❖

यदि भीतर विकार हो तो दिमाग़ की सफाई से साफ करना चाहिये धीरे-धीरे वह दूर हो जायेगा। प्रेम की प्रतिष्ठा कर देनी चाहिये बस यही रास्ता है। (पत्र 635, पृष्ठ 590)

❖ ❖ ❖